योगविद्या

वर्ष 6 अंक 5
मई 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती;
2: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती;
3: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती;
4: स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

अर्थ–जिस प्रकार कछुआ सब ओर से अपने अंग समेट लेता है, उसी प्रकार साधक जब अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से खींच लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाना प्रत्याहार है। बाह्य विषयों के पीछे भागना मन का प्राकृतिक स्वभाव है। जो साधक प्रत्याहार का अभ्यास करता है वह संसार से बेखबर हो जाता है। वह बाह्य घटनाओं और विषयों से प्रभावित नहीं होता। किसी भी समय वह संकल्प मात्र से अपनी इन्द्रियों को अपने नियंत्रण में ला सकता है।

प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा मानसिक शांति और दृढ़ता की प्राप्ति होती है, तथा आसक्ति-जनित अशुद्धियों का निवारण होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 5 ·मई 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

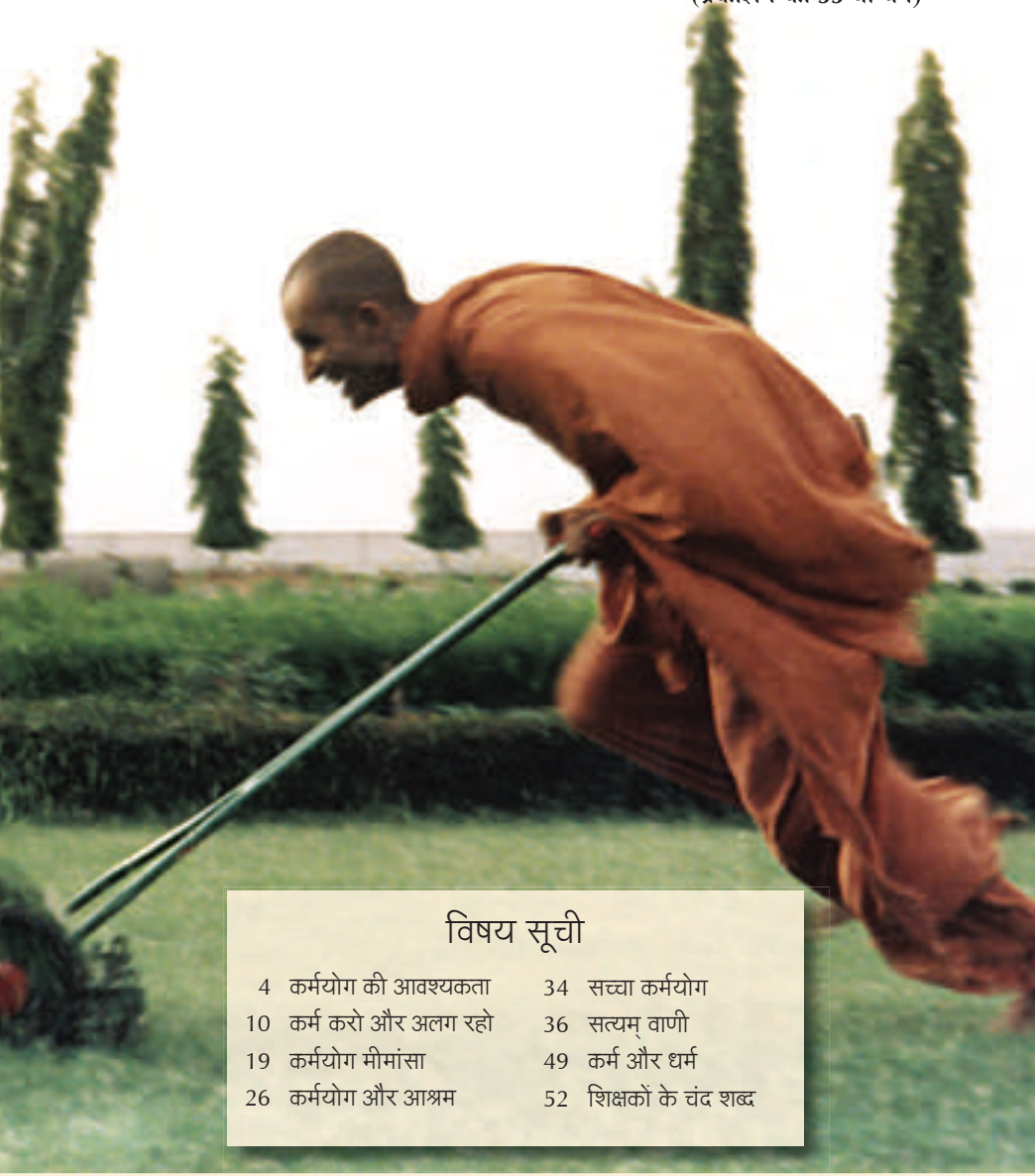

विषय सूची

4 कर्मयोग की आवश्यकता
10 कर्म करो और अलग रहो
19 कर्मयोग मीमांसा
26 कर्मयोग और आश्रम
34 सच्चा कर्मयोग
36 सत्यम् वाणी
49 कर्म और धर्म
52 शिक्षकों के चंद शब्द

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

कर्मयोग की आवश्यकता

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सरिताएँ सर्वदा सबके लिए ताजा, स्वच्छ तथा पेय जल प्रदान करती हैं। वृक्ष फल और छाया देते हैं। सूर्य प्रकाश, उष्मा और शक्ति प्रदान करता है। पृथ्वी सभी प्रकार के धान्य, शाक और फल देती है। पुष्प सौरभ एवं सुषमा प्रदान करते हैं। गायें पौष्टिक दूध देती हैं। केवल मनुष्य को छोड़ कर शेष सब असीम आत्म-त्याग करते हैं। एकमात्र मनुष्य ही निरा स्वार्थी है।

राष्ट्रीय जागृति के लिए आध्यात्मिक संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता है जिसका आज नितान्त अभाव है। केवल आध्यात्मिक संस्कृति में ही वह शक्ति है जिससे मनुष्य का आत्मबल बढ़ता है और स्वार्थ, भीरुता आदि के नाशोपरांत वह शक्तिशाली तथा साहसी बनता और शरीर के मोह से मुक्त होता है। नि:स्वार्थी व्यक्ति ही देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं, एकता के लिए काम कर सकते हैं और विश्व-प्रेम को विकसित कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति तथा अपनी स्त्री और सन्तान के प्रति बहुत उदार रहता है, पर वह दूसरों की उपेक्षा करता है। व्यर्थ ही वह सोचता है कि वह दूसरों से भिन्न है। यह अज्ञान है, माया है। जन्म-मरण और मानवीय शोक एवं कष्टों का यही कारण है। भेदभाव ही मृत्यु है और एकता ही शाश्वत जीवन है।

विशुद्ध प्रेम के द्वारा लोगों का हृदय जीत लीजिए। सत्य का आधार लेकर योग के क्षेत्र में विजयी होते जाइए। अहंकार का त्याग कर परम शान्ति के असीम राज्य में प्रवेश कीजिए। अज्ञान को दूर कर आत्म-ज्ञान प्राप्त कीजिए। वासनाओं को कुचल कर दिव्य आनन्द के असीम पथ पर चलिए।

समस्त बुराइयों का मूल स्रोत स्वार्थ है। वह अज्ञान से पैदा होता है। स्वार्थी मनुष्य लोभी और अन्यायी होता है। वह ईश्वर से बहुत दूर है। वह अपना हेतु सिद्ध करने के लिए सब-कुछ कर सकता है। अपना स्वार्थ साधने के लिए वह दूसरों को घायल कर सकता है, दूसरों की सम्पत्ति छीन सकता है और अन्य कई पाप-कर्म कर सकता है। न तो उसमें समझ होती है और न चरित्र। वह जानता ही नहीं कि मानसिक शान्ति क्या वस्तु है। वह सदा दूसरों की सम्पत्ति छीनने, सत्ता हस्तगत करने और नाम तथा ख्याति पाने की ही योजनाएँ बनाता है। वह हमेशा अपने को दूसरों से अलग मान कर चलता है। वह अपनी पत्नी, बच्चे और सम्पत्ति से अत्यधिक आसक्त रहता है। वह आसक्ति और दूसरों के प्रति भेदभाव की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। योग-साधना में स्वार्थ बहुत बड़ी बाधा है। उसे नि:स्वार्थ सेवा, दान और सत्संग के द्वारा निर्मूल कीजिए।

स्वार्थ के कारण आपका मन संकीर्ण तथा हृदय संकुचित हो गया है। उसे विशाल बनाने का एक ही उपाय है—नि:स्वार्थ होकर दूसरों की सेवा और सहायता करना। तब आप परमेश्वर या ब्रह्म से एक हो जायेंगे। इसलिए सेवा में आनन्द अनुभव कीजिए।

कई लोग वर्षों तक अपना जीवन गंगातट पर व्यतीत करते हैं। वे जप, कीर्तन और वेदान्त-ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, बार-बार 'अहं ब्रह्मास्मि' का जप करते हैं, फिर भी आत्म-साक्षात्कार नहीं कर पाते। वर्षों पूर्व वे जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं, क्योंकि उनका चित्त विशाल नहीं है। उनकी वृत्ति उदार नहीं है। सच्चे साधक के लिए चित्त-वैशाल्य अत्यन्त आवश्यक गुण है। नि:स्वार्थता, दानशीलता, मानव-सेवा, दयाभाव तथा उदार वृत्ति से हृदय शीघ्र विशाल होगा। प्राणिमात्र में एक ही आत्मा निवास करती है। यदि आपमें सर्वव्यापी प्रेम नहीं है, यदि आप अपनी चीजों का दूसरों के साथ बाँट कर उपभोग नहीं कर सकते हैं तो फिर भगवान का साक्षात्कार कैसे कर सकेंगे?

जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है निष्काम कर्म अर्थात् नि:स्वार्थ भाव से स्वधर्म का पालन। निष्काम कर्म के अभ्यास से चित्त शुद्ध होता है और भेद-भाव मिटता है। फिर भगवत्कृपा पाने और चित्त को स्थिर करने के लिए उपासना में लगना होगा। अन्त में वेदान्त का आश्रय ले कर अज्ञानावरण मिटाना होगा और जन्म-मृत्यु-रूपी संसार-सागर से मुक्त होकर कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति करनी होगी।

नि:स्वार्थ सेवा के लिए हृदय में भरपूर उत्साह भर लीजिए। अपने भीतर सहिष्णुता का गुण विकसित कीजिए। सबके प्रति दयालु रहिए। सबसे प्रेम कीजिए। सबकी भगवद्-भाव से सेवा कीजिए। देना सीखिए। देने में बड़ा आनन्द है। यह बहुत कम

लोग जानते हैं। ईश्वरेच्छा पर भरोसा रखना सीखिए। आत्म-समर्पण अनिर्वचनीय शान्ति है। इसका अनुभव विरले ही कर पाते हैं। विवेक करना सीखिए। सत्य और असत्य का विवेक करने में महान् आनन्द है। इसकी पहचान बहुत कम व्यक्तियों को होती है। निर्विकार रहने का अभ्यास कीजिए। वैराग्य को विकसित करने में बहुत तृप्ति है। इसे गिने-चुने लोग ही समझ सकते हैं।

कुछ लोग काम कर सकते हैं, ध्यान नहीं। कुछ लोग ध्यान कर सकते हैं, काम नहीं। यह एकांगी विकास है। प्रत्येक साधक में ध्यान और निष्काम कर्म, दोनों करने की शक्ति होनी चाहिए। यह समन्वय योग है। यह शक्तिदायी योग है। इसके सिद्ध होने पर आप संसार में रहें या एकान्त में, आपका चित्त विक्षिप्त नहीं होगा। आपके मन का सन्तुलन बना रहेगा और तभी सर्वांगीण विकास सम्भव होगा।

विश्व-प्रेम की भावना को विकसित करो। विश्वात्मा के साथ एक हो जाओ। स्वार्थ और संकीर्णता छोड़ो। फैलो, उदार बनो। जागो, उठो। शिथिलता और उदासीनता त्यागो। एकता का जीवन व्यतीत करो। अपनी प्रसुप्त शक्तियों को प्रकट होने दो। उद्यत हो जाओ, दृढ़ रहो। आत्मा को पहचानो। उज्ज्वल भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि आप अपनी पत्नी और सन्तान में ही आसक्त रहे तो विश्व-प्रेम विकसित नहीं कर सकोगे। आपके हृदय में विश्व-बन्धुत्व की भावना पनप नहीं सकेगी, आपका हृदय संकुचित और सीमित हो जायेगा। आपका प्रेम कुछ ही लोगों तक सीमित रह जायेगा। स्वार्थ के कारण आपने अपने घर के लोगों तक ही अपनी सीमा-रेखा बना ली है। आप सदा यही सोचते रहते हो कि 'मेरे घर वाले समृद्ध होते जायें, हम खुश रहें, दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता में क्यों पड़ें?'

परन्तु जिसका प्रेम विश्वव्यापी हो गया है, वह सबकी ओर समान दृष्टि से देखता है। वह सबसे प्रेम करता है, सबको गले लगाता है। सभी बच्चे उसके अपने बच्चे हैं। सभी पुरुष उसके भाई हैं और सभी स्त्रियाँ उसकी बहनें। सारा विश्व ही उसका परिवार है। संसार ही उसका घर है। सबके प्रति उसे सहानुभूति है, वह सबकी सेवा करता है। उसके पास जो-कुछ है, वह सबके साथ बाँट कर भोग करता है। उसे सबके भले की

चिन्ता है। दूसरों के हित के लिए वह अपना हित त्याग देता है। वह जीता है दूसरों के लिए और मरता भी है दूसरों के लिए। कितना भव्य व्यक्तित्व है, कितना विशाल हृदय है उसका! वह धरती पर साक्षात् भगवान ही है।

हृदय-हीन वेदान्त पूर्णत: शुष्क है। ज्ञान के बिना भक्ति अन्धी और अस्थिर है। कर्म से पूर्णता आती है। हृदय की भावना कर्म के द्वारा अभिव्यक्त होती है। नि:स्वार्थ सेवा के द्वारा शुद्ध अद्वैत भावना पैदा हो सकती है। पदार्थ मात्र में आत्मभाव रखने वाला मुक्त पुरुष विश्व की सेवा से भला कैसे विमुख हो सकता है?

दु:खियों के प्रति निश्चित, गहरी और सक्रिय संवेदना प्रकट करने वाले लोग विरले हैं। केवल मौखिक सहानुभूति दिखाने वालों से दुनिया भरी पड़ी है। सक्रिय सहानुभूति वाला व्यक्ति जहाँ भी दु:खी को देखेगा, अपना सब कुछ उसे तुरन्त दे देगा। उसका हृदय बहुत ही कोमल होता है। तीव्र विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति को देखते ही उसका दिल पिघल जायेगा। दु:खी मनुष्य का दु:ख वह स्वयं अनुभव करेगा। केवल मौखिक संवेदना प्रकट करने वाला व्यक्ति ढोंगी होता है। अनिश्चित संवेदना वाला व्यक्ति दु:खी की दयनीय अवस्था देखकर थोड़ा-सा दु:ख अनुभव करेगा, परन्तु अपनी जेब से कुछ भी सहायता करने को तैयार न होगा। उसकी मुट्ठी बन्द रहती है। ऐसा व्यक्ति भी अधिक अनुभव पाने के बाद सुस्थिर संवेदना वाला बन सकता है।

एकमात्र नि:स्वार्थ सेवा ही साधक को विश्व-चैतन्य एवं परमेश्वर के साथ एकरूपता की ओर ले जा सकती है। जिसका चित्त शुद्ध नहीं है, वह भले ही सब वेदों में पारंगत हो, वेदान्त का विद्वान् हो, पर उस परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता जो प्रत्येक प्राणी के हृदय-मन्दिर में है, विश्वाधार है, सर्वव्यापी और स्वयं-प्रकाश है।

सेवा का हेतु क्या है? दीनों और दु:खियों की, समाज और देश की सेवा क्यों करें? इसलिए कि सेवा करने से चित्त शुद्ध होता है। अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता आदि के भाव समाप्त होते हैं। नम्रता, शुद्ध-प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और करुणा जागृत होती है। भेद-भाव मिटता है। नि:स्वार्थता पनपती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण उदार होगा। जीव मात्र की एकता अनुभव होने लगेगी। उदार दृष्टि के साथ हृदय भी उदार होगा। परिणामस्वरूप आत्मज्ञान होगा। 'सबमें एक' और 'एक में सब' की अनुभूति होगी। असीम सुख मिलेगा। व्यक्ति-व्यक्ति की समष्टि ही समाज है। विश्व भगवान की अभिव्यक्ति है। मानव-सेवा ही भगवत्सेवा है। सेवा ही पूजा है। इस भाव से सारे काम होने चाहिए। तब शीघ्र चित्त शुद्ध होगा और आत्मानुभव होगा।

कर्मयोग के प्रकार

आत्मभावपूर्वक मानवता की नि:स्वार्थ सेवा ही चित्त-शुद्धि का साधन और परम सत्य के साक्षात्कार का राजमार्ग है। उस सेवा का माध्यम कुछ भी हो सकता है,

जैसे सामाजिक संस्थाओं को दान देना, भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र देना, अभावग्रस्तों के प्रति संवेदना प्रकट करना, रोगियों की सेवा करना, पतितों को सहारा देना, पीड़ितों की सहायता करना, अज्ञानियों को उनसे कुछ भी प्रतिफल की अपेक्षा न रखते हुये ज्ञान देना, गरीब विद्यार्थियों को बिना किसी प्रत्याशा के पढ़ाना और यह समझना कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सब उस भगवान की ही योजना है और हम उसके हाथ के साधन हैं, निमित्त मात्र हैं। यही निष्काम कर्मयोग है।

वैद्य गरीब रोगियों का उपचार सही मनोभाव से करे तो उसका चित्त शीघ्र शुद्ध होगा। वैद्य यदि कर्मयोगी बने तो वह बड़ी सरलता से भगवत्साक्षात्कार कर सकता है। जिस किसी की भी वह सेवा करे तो यही समझे कि साक्षात् भगवान की सेवा कर रहा हूँ।

गरीबों, रोगियों और दीन-दु:खियों को दान दो। अनाथों को, अपंगों को, अन्धों को, असहाय विधवाओं को दान दो। साधुओं, संन्यासियों तथा धार्मिक एवं समाज-सेवी संस्थाओं को दान दो। उस व्यक्ति को धन्यवाद दो जो आपको दान-पुण्य करने का अवसर देता है। सही मनोभाव से युक्त दानशीलता द्वारा भगवत्साक्षात्कार करो। सही भावना से दान देने वाले धन्य हैं।

दूसरों को समझने की बुद्धि सर्वदा विकसित करो। छोटे भाइयों को भी आध्यात्मिक मार्ग में लगाओ। उन्हें ऊपर उठाओ। उनका मार्ग प्रशस्त करो। उनसे पूर्णता की अपेक्षा न रखो। उनके प्रति दयालु रहो। जैसे आप अपना प्रयत्न कर रहे हो, वैसे ही वे भी यथा-शक्ति अपना प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी सहायता करने से आपकी भी उन्नति होगी।

हृदय-शुद्धि और दिव्य ज्योति के अवतरण के लिये उत्साहपूर्वक नि:स्वार्थ सेवा का अभियान प्रारम्भ करो। सुनियोजित और व्यवस्थित रूप से काम करो। सेवा में

तीव्रता रहे, लगन रहे। थोड़े समय ही विश्राम और निद्रा लो। बिना कष्ट उठाये सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसका फल अमरत्व की प्राप्ति है। तेजस्वी योगी बनो! सभी नि:स्वार्थ सेवकों तथा गीतोक्त भावना के अनुसार कर्मरत कर्मयोगियों की जय हो!

आध्यात्मिक जगत् में संख्या का महत्त्व नहीं है। अद्वैत वेदान्त की स्थापना करने वाले शंकराचार्य एक ही थे। इस विश्व में शैतान के अनुयायी असंख्य हैं तो क्या हम यह समझें कि शैतान का काम उत्तम है? निष्ठावान् सेवक किसी भी आध्यात्मिक संस्था या आंदोलन की सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं। इन थोड़े-से साथियों द्वारा बहुत आश्चर्यजनक सेवा की जा सकती है। कभी यह शिकायत नहीं होनी चाहिये कि सदस्यों की संख्या कम होने के कारण हम समाज-सेवा का कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाते।

निर्धनों और रोगियों की किसी भी प्रकार की सेवा आध्यात्मिक श्रेय और त्वरित प्रगति के लिये एक अच्छा साधन है। सहायता के लिये दो-तीन साथी भी रहें तो पर्याप्त है। एकीभूत हृदय और उन्नत आदर्श के साथ काम करें तो दो-तीन व्यक्ति भी बहुत उपयोगी सेवा कर सकते हैं।

किसी भी मतभेद या फूट को निभा लेना चाहिये। मित्रता, प्रेम और गलतफहमी के निराकरण द्वारा समाज की शान्ति बनाये रखनी चाहिये। तब सबसे एकता स्थापित होगी और कई ठोस काम हो सकेंगे। शुद्ध प्रेम और सतत् सेवा के द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करने की कला सीखनी चाहिये। यह बहुत बड़ा योग है।

एक अंग्रेज जिलाधीश था। वह बड़ा दयालु था। एक दिन सड़क पर उसने एक मरणासन्न रोगी को देखा। उसने उसे अपने कंधे पर उठाकर पास के अस्पताल में पहुँचाया। उसकी एकता की भावना को तो देखिये! वह भले ही उपनिषद् न जानता हो, पर सच्चा वेदान्ती था।

कई लोग, बल्कि कई संन्यासी तक यह कहते हैं कि महात्मा गाँधी सामान्य कर्मयोगी थे, वेदान्ती नहीं। परन्तु सही बात तो यह है कि महात्मा गाँधी से बढ़कर वेदान्ती कोई दूसरा नहीं है। उनके जीवन का एक-एक क्षण व्यावहारिक वेदान्त की ही अभिव्यक्ति था। वे सभी को प्रेम से अपना चुके थे। स्वार्थ-त्याग, सेवा, अहिंसा, सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य, नम्रता और एकता—यही उनकी नीति थी। फिर भी वे वेदान्ती का बिल्ला नहीं लगाते थे और न ही तथाकथित वेदान्तियों को प्रसन्न करने के विचार से 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते थे।

सारा विश्व आपके विरुद्ध खड़ा हो जाए तो भी अपनी स्थिति पर दृढ़ रहिये, अपने आदर्शों ओर सिद्धान्तों से एक अंगुल मात्र भी विचलित न होइये। तामसिक लोग जो करना चाहें, करने दो। झूठी अफवाहें उड़ाने दो, चुगली करने दो। दृढ़ बने रहो। अभियोग, खतरे और किसी प्रकार के विरोध से घबराओ नहीं। भगवान सदा आपके साथ हैं। *'सत्यमेव जयते नानृतम्'*– इसलिए आप सत्यनिष्ठ रहो, दुगुने उत्साह और शक्ति से नि:स्वार्थ सेवा करते जाओ।

कर्म करो और अलग रहो

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जिस प्रकार समुद्र में असंख्य रत्न हैं, पृथ्वी पर असंख्य वनस्पतियाँ हैं, उसी प्रकार गीता में ज्ञान का अनन्त भण्डार है। जीवन को सही रास्ते पर ले चलने के लिए हर एक आदमी के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है। जैसे गोताखोर समुद्र में गोता लगाकर या वनस्पति-शास्त्री वन-पर्वतों में घूमकर अपने मन के अनुकूल मोतियों और वनस्पतियों को ढूँढते हैं, उसी तरह से प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए जो कुछ भी चाहिए, उसे गीता में से खोज निकालना चाहिए।

किसी को जीवन का सीधा रास्ता मालूम नहीं है, सब लोग भटक रहे हैं, सब दु:खी हैं। जिनके जीवन में पीड़ा है, तकलीफ है, ऐसे लोगों के कल्याण के लिए

इस गीता-शास्त्र की रचना हुई है। गीता दो रास्ते बतलाती है, एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा है निवृत्ति मार्ग। गीता में कहा है–

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥3.3॥

प्रवृत्ति मार्ग सबके लिए है और निवृत्ति मार्ग कुछ थोड़े-से लोगों के लिए है। कर्म में प्रवृत्त होना, संसार के कार्यों में लगना, विषयों के साथ सम्पर्क स्थापित करना, यही प्रवृत्ति मार्ग है। जहाँ विषयों से आसक्ति न हो वह निवृत्ति मार्ग है।

प्रवृत्ति के मार्ग में बहुत कष्ट हैं। जब तुम संसार में अपने को फँसाते हो, जब संसार के कर्मों में अपने को लिप्त रखते हो तब तुम्हारे और संसार के बीच जो सम्बन्ध या आसक्ति होती है, उससे व्यथा, दु:ख, विषाद आदि की उत्पत्ति होती है। व्यक्ति और कर्म के सम्बन्ध गहरे हो जाने से एक तीसरी चीज की उत्पत्ति होती है, जिसको कहते हैं विषाद, दु:ख, क्लेश या तकलीफ। यह सारी दुनिया का नियम है। जहाँ कर्म के साथ तुम्हारा सम्पर्क होगा, जहाँ प्रवृत्ति के साथ तुम्हारा रिश्ता होगा, वहाँ दु:ख होगा। क्यों होगा दु:ख? गीता के एक श्लोक में स्पष्ट कहा गया है– *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन*–मनुष्य का कर्म में अधिकार है, फल में उसका कोई अधिकार नहीं। मगर जब मनुष्य कर्म करता है तब फल की इच्छा से करता है। बस, यही दु:ख की जड़ है। फल तीन प्रकार के होते हैं– *अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मण: फलम्*–जो तुम चाहते हो, जो तुम नहीं चाहते हो और तीसरा इन दोनों का मिश्रित फल, और यदि फल-प्राप्ति में तुम्हारा अधिकार है तो उन तीनों को भोगने के लिए भी तुम्हें तैयार रहना चाहिए।

प्रवृत्ति मार्ग में चलने वाले संसार के प्राणियों को प्रवृत्ति के साथ एक और गुण की उपासना करनी चाहिए। वह गुण है फलाकांक्षा का त्याग, जिसे कहते हैं अनासक्ति। उसी को सारी गीता में समझाया गया है। संन्यास, राजयोग और भक्तियोग को समझाते समय श्रीकृष्ण की एक आवाज है–अनासक्ति। इस अनासक्ति को हमेशा लोगों ने गलत समझा है। अनासक्ति का मतलब लोग लापरवाही या गैर-जिम्मेदारी से लगाते हैं। किसी का कुछ नुकसान हो गया तो लोग कहते हैं–'होने दो, हम तो अनासक्त हैं, हमें उससे क्या', पर यह गलत दृष्टिकोण है।

अनासक्ति का वास्तविक तात्पर्य

अनासक्ति एक गतिशील त्याग है, जिसमें कर्म है, पर कर्म का फल नहीं है; जिसमें वस्तु है, मगर वस्तु के प्रति मोह नहीं है; जिसमें व्यक्ति है, घर है, परिवार है, समाज है, राष्ट्र है, लेकिन उससे उत्पन्न होने वाला जो फल है वह मेरा नहीं है। यही अनासक्ति है।

अनासक्ति को आप ठीक-ठीक संदर्भ में समझ लीजिए। मैं दो व्यक्तियों की कहानी सुनाता हूँ। एक का नाम था लल्लू महतो और दूसरे का कल्लू महतो। दोनों सगे भाई थे। एक दिन ये लोग बाजार गये और वहाँ से आम की छोटी-छोटी दो सौ कलमें खरीदकर लाये। उन्होंने उन आम की कलमों को खेत में रोप दिया। रात को लल्लू अपने कमरे में बैठा और सोचने लगा– 'बड़ा अच्छा है, पचास-साठ कलमें लगाई हैं, पाँच साल में आम मिलेंगे। फिर उनको बाजार में बेचेंगे, फिर उनसे इतना रुपया मिलेगा। सातवें साल इतना रुपया होगा।' इस प्रकार वह बेचारा एक बजे रात तक सोचता रहा। उसने आम पैदा भी कर लिए, बाजार में बेच भी आया। उसने दो-चार ट्रक भी मोल ले लिए, उसने आमों की निर्यात एजेन्सी तक बना ली। आयकर विभाग से पैसा कैसे छिपाना चाहिए, वह भी उसने सोच लिया।

अन्त में जब वह सबेरे उठा और अपने खेत का चक्कर लगाने गया तो क्या देखा? रात को भैंसों ने उसकी करीब-करीब सभी आम की कलमों को रौंद दिया था! बेचारे का दिल टूट गया। वह वापस घर आ रहा था कि बेटा रास्ते में मिला और बोला– 'पिताजी आज फीस का दिन है।' लल्लू झुंझलाकर बोला– 'पैसे पेड़ पर लगते हैं क्या!' और दो चाँटे लगा दिये। अन्दर गया तो पत्नी पर भी बिगड़ने लगा– 'दिनभर कुछ करती-धरती नहीं है, अभी तक चाय भी नहीं लाई है।' गुस्से में उसने कप फेंक दिया, गिलास फेंक दिया।

उधर कल्लू महतो था। आम तो लगा दिये हैं, यही दो-चार बातें सोचकर वह सो गया। सबेरे जब वह उठा तो अपने खेत की तरफ गया। उसने देखा कि उसकी चालीस-पचास कलमों को रौंद दिया गया था। तुरन्त वह वापस आया और अपने बेटे-भतीजों सबको लाकर बची-खुची कलमों को संभालने में लग गया, बाड़ लगाने लगा।

फलाकांक्षा के, दु:ख और सुख के ये दो उदाहरण मिलते हैं। मनुष्य का कर्म के साथ, कल्पना के साथ, जीवन की योजनाओं और तमन्नाओं के साथ कितना गहरा सम्बन्ध होना चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति को जानना जरूरी है। जो व्यक्ति इसको नहीं जानते हैं, वे हमेशा दु:खी रहते हैं। गीता में इस बात को बिल्कुल स्पष्ट रूप से बतलाया है कि अनासक्ति का अर्थ कर्म का त्याग नहीं होता है। अनासक्ति का अर्थ यह होता है कि कर्म से उत्पन्न होने वाले फलों का जो हमारे दिमाग पर असर होता है, उस असर से हम अपने को अलग रखें।

गीता हम लोगों के सामने रोशनी की तरह रही है। गीता में जो अनासक्ति की शिक्षा दी गयी है, उसमें समझाया भी है कि कैसे अनासक्ति के साथ कर्म करना चाहिए। अब इस पर प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना होगा। जब अर्जुन के मन में बड़ी शंका थी, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसको ज्ञान का उपदेश दिया, फिर त्याग का उपदेश दिया। जब कर्म का भी उपदेश दिया तो उसको बड़ा भ्रम हो गया, वह कहने लगा–

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥3.2॥

कभी कहते हो कर्म करो, लड़ो और कभी कहते हो कर्म न करो। हे कृष्ण, तुम यह जो मिला-जुला, उलझाने वाला व्याख्यान दे रहे हो, वह मेरी समझ में नहीं आ रहा। निश्चित रूप से बतलाओ कि मैं कर्म करूँ या कर्म का त्याग करूँ? यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रश्न है। इस दुनिया में कर्म करना या नहीं करना। घर-गृहस्थी करना कि छोड़ना। शादी करना कि नहीं करना। बाल-बच्चे पैदा करना कि नहीं करना। स्कूल में पढ़ना कि नहीं पढ़ना। पैसा कमाना कि नहीं कमाना। ये सब प्रश्न व्यक्ति को उलझाये हुए हैं।

श्रेय मार्ग तथा प्रेय मार्ग

दुनिया में दो रास्ते हैं—श्रेय तथा प्रेय। श्रेय महान् और ऊँचा रास्ता है, जबकि प्रेय सुखदायक और आसान मार्ग है। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से प्रेय मार्ग नहीं माँगता है। वह कहता है कि तुम मुझको जो कुछ भी बतलाओगे, वह इसलिए बतलाओ कि मैं श्रेय को प्राप्त कर सकूँ। जिस रास्ते से होकर मनुष्य को आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के चक्कर कटते हैं, मनुष्य की अविद्या का मोतियाबिंद दूर होता है, वही श्रेय का मार्ग है। और प्रेय का मार्ग कौन-सा है? जिस रास्ते पर चलकर बड़ा मजा आता है, वह प्रेय मार्ग है। रसगुल्ला प्रेय मार्ग है। रसगुल्ले में बड़ा मजा आता है, सिनेमा में भी बड़ा मजा आता है। खूब बढ़िया खेल हो, बढ़िया कपड़े हों, सुन्दर साड़ी हो, सोने की चूड़ी हो, टाई-पैन्ट हो, यह सब प्रेय का मार्ग है।

नचिकेता ने यमराज से जो तीन वर माँगे थे, उनमें से एक वर यह था—'देखिये यमराज! आप तो मृत्यु के इस पार की भी बात जानते हैं और उस पार की भी। आपके पास तो दोनों लोकों का पासपोर्ट है। मुझे यह बतलाइये कि मरने के बाद आत्मा सचमुच जीवित रहती है कि नहीं।'

यमराज ने कहा, 'बच्चे! तुम क्या फालतू प्रश्न पूछते हो। देवता, ऋषि-मुनि, सन्त, सिद्ध-योगी, सब लोग इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते हार गये, मर गये। तुम क्यों पूछते हो इस बात

को? चुप रहो।' नचिकेता ने कहा, 'नहीं, मुझे यही वरदान दो, बतलाओ क्या होता है।' उन्होंने कहा, 'बेटा, हम तुम्हें सोना देंगे, घोड़ा देंगे, हाथी देंगे, बढ़िया कपड़े देंगे, तुमको लोक-लोकान्तरों का साम्राज्य देंगे और तुम्हारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी सबको वह साम्राज्य देंगे, लेकिन यह प्रश्न तुम हमसे मत पूछो।'

तब नचिकेता यमराज से भिड़ गया, 'हे यमराज, आप मुझसे क्या कहते हैं? यह सब तो प्रेय है। जैसे मनुष्य अनाज को खाकर उसको फेंक देता है उसी प्रकार भोग की जितनी चीजें होती हैं, वे सब अस्थायी होती हैं। थोड़ी देर तक आदमी उनको ग्रहण करता है और सुख-दु:ख के रूप में उलट कर फेंक देता है। सांसारिक भोग अविनाशी नहीं, नाशवान् है।' यमराज ने फिर उसको समझाया, 'हस्ति, हिरण, जो कुछ चाहिए हम सब तुमको दे देंगे।' लेकिन नचिकेता ने कहा, 'नहीं।'

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर: ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। जो ज्ञानी होते हैं वे प्रेय मार्ग नहीं चाहते हैं और जो अज्ञानी होते हैं वे प्रेय मार्ग को ही चाहते हैं। धनं देहि, टेलीविजनं देहि—यह प्रेय का मार्ग है। जो प्रेय के मार्ग में जा रहे हैं, वे रो रहे हैं। यूरोप रो रहा है, अमेरिका रो रहा है, ऑस्ट्रेलिया रो रहा है, सारी दुनिया रो रही है और हिन्दुस्तान ने भी थोड़ा-थोड़ा रोना शुरू किया है। लेकिन जो श्रेय का मार्ग है, वह आनन्द का मार्ग है। इसीलिए अर्जुन कहता है—*तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।* मुझे वह रास्ता बतलाओ जिस पर चलकर मैं श्रेय, ज्ञान, प्रकाश और आत्मा की प्राप्ति करूँ। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि जो व्यक्ति एक रास्ते पर ठीक ढंग से चलेगा, उसको दोनों की प्राप्ति होगी। वह रास्ता है गीता का।

गीता कहती है काम भी करो और काम से अलग भी रहो। संभव है क्या? हाँ, संभव है। संसार में कमल के पत्ते की तरह रहकर—*पद्मपत्रमिवाम्भसा।* कमल का पत्ता जल में पैदा होता है, जल के बिना नहीं रह सकता, मगर फिर भी जल से वह अलग है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.58॥

जैसे कछुआ अपने अंगों को अन्दर समेट लेता है, उसी प्रकार ज्ञानी आदमी विषयों के मार्ग में चलते समय विषयों का जो विष होता है, विषयों का जो डंक होता है, विषयों की जो लाल बत्ती होती है, वहाँ पर अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है।

अब करना क्या है? चलना कैसे है? मेरी समझ में दो सूत्र आते हैं। एक, मैं जो कुछ भी कर्म करता हूँ, अपने को निमित्त मानकर ही करता हूँ। अगर मैं इस

काम को नहीं भी करूँगा तो भी यह काम होगा। इसको कहते हैं निमित्त भाव। दूसरा तरीका, कर्म करने के बाद उससे जिस फल की उत्पत्ति होती है उस फल को बाँट देना चाहिए, दूसरों को दे देना चाहिए। इससे मनुष्य उस कर्म के फल से मुक्त रहता है।

आज हमारे देश में बहुत-से करोड़पति लोग हैं। बहुतों को मैं जानता भी हूँ। उनके घर में डॉक्टरों की लाइन लगी रहती है। रोज बीमार पड़ते हैं, सबेरे और शाम। मुझसे पूछते हैं, 'स्वामीजी, बड़ी तकलीफ है, कोई आसन वगैरह बतलाइये।' मैं कहता हूँ, 'जितनी चिन्ता धन और मान की संभाले हो उसे मुझे दे दो, तबियत ठीक हो जायेगी।' हम बोलते हैं जो अधिक है हमें दे दो, तुम्हारी तबियत ठीक हो जायेगी। लेकिन लोगों को डर लगता है किसी को धन देने में। जो धन आदमी को सम्पत्तिशाली बनाता है, वह साथ ही चिन्तित और परेशान भी बनाता है।

व्यक्ति को सम्पत्तिशाली नहीं, ऐश्वर्यशाली होना चाहिए। जैसे श्री कृष्ण हुए, श्री राम हुए, वे सम्पत्तिशाली नहीं, ऐश्वर्यशाली थे। सम्पत्ति तो दुःख का कारण है। सम्पत्ति का अर्जन करते समय हम आसक्ति, ममता, मोह और द्वेष का शिकार होते हैं। गीता में इन सब बातों को बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है। इसका सब लोगों को अध्ययन करना चाहिए और इसी के मुताबिक अपने जीवन को बनाना चाहिए। अगर आप गीता का एक श्लोक ठीक ढंग से समझ लोगे तो जीवन के लिए एक दिशा मिल जायेगी–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 18.66 ॥

इन्द्रियों और मन के धर्मों को छोड़कर मनुष्य को ईश्वर की शरण में जाना है। यहाँ धर्म को छोड़ने के लिए नहीं बोलता हूँ, बल्कि प्रकृति और कर्म के धर्मों को छोड़ने को कहता हूँ। दुनिया में एक ही शक्ति है जो मनुष्य को दुःख से मुक्त कर सकती है। आप दूसरे का नाम लेना छोड़ दो कि वह गवर्नर है, कलेक्टर है, मजिस्ट्रेट है या मिनिस्टर है जो मुझे दुःख से मुक्त कर देगा। नहीं, किसी में ताकत नहीं। अंधे के कंधे पर जिन्दगी भर चलते रहोगे तो कभी मंजिल पर नहीं पहुँचोगे। सब दुःखी हैं, तब तुम्हारे दुःख को कौन दूर कर सकता है? दुःख को दूर करने वाली शक्ति एक है, और वह शक्ति है ईश्वर का अनुग्रह। जिस दिन तुम्हें ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जायेगा, तुम परम सुखी बन जाओगे। तुम पापरहित बन सकते हो, तुम पिपासारहित बन सकते हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह से कितने दिन तक लड़ोगे? संभव नहीं है, मर जाओगे। ये बड़ी शक्तियाँ हैं। इनके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए केवल एक की शरण में रहना।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण को चुना था, उन्हें अपना सारथी बनाया। उसी प्रकार मैं आपसे पूछता हूँ और आप भी आज अपने से पूछिये कि आपके जीवन का सारथी

कौन है? मन मेरा सारथी, लोभ मेरा सारथी, काम मेरा सारथी, क्रोध मेरा सारथी, स्वार्थ मेरा सारथी। सब लूले-लंगड़े, कोढ़ी लागों को आपने ड्राइवर बना दिया है, किसी को भी गाड़ी चलाना मालूम नहीं, इसलिए तो दुर्घटना हो जाती है। सफर लम्बा है और ड्राइवर अनाड़ी है। जीवन के इस महायुद्ध में हमलोगों की अपनी व्यूहबन्दी होनी चाहिए और हमें इस शरीर रूपी रथ में अर्जुन की तरह अन्तर्यामी प्रभु से गीता का ज्ञान आत्म-चिंतन के द्वारा सीखना चाहिए। गीता के बारे में हम रात-दिन बोल सकते हैं, पर हमारी बात समाप्त नहीं होगी क्योंकि गीता का ज्ञान जीवन के हर पक्ष में मदद करता है।

त्याग का व्यावहारिक रूप

एक संस्मरण याद आता है। मैं जब स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम गया तो मुझे एक कमरा दिया गया। मैं बड़ा विचित्र आदमी था। बिना कम्बल के जमीन पर सोता था। जो कम्बल मुझे आश्रम से दिया गया उसे मैंने लौटा दिया। मैं दरवाजे में ताला भी नहीं लगाता था, क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं ताला लगाने लायक। कमरे में मैं घड़े में पानी भी नहीं रखता था, लोटा भी नहीं रखता था, गिलास तक नहीं रखता था। यदि प्यास लगती तो सीधे गंगाजी जाता था। मैं आश्रम का ज्वाइन्ट सेक्रेटरी था, लेकिन जंगलों में लैट्रिन के लिए जो बाल्टी होती है वह भी मैं अपने पास नहीं रखता था। हाँ, गीता रोज पढ़ता था और उस पर चिंतन भी करता था।

एक दिन स्वामीजी निरीक्षण के लिए मेरे कमरे में आये। मेरी अलमारी देखी, वह खाली थी। चौकी देखी, वह भी खाली। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारे कमरे में गिलास-वगैरह नहीं है क्या?' मैंने कहा, 'मैं गिलास नही रखता।' वे बोले, 'क्यों नहीं रखते?' मैंने कहा, 'मुझे परिग्रह अच्छा नहीं लगता।' परिग्रह का अर्थ होता है चीजों को इकट्ठा करना। वे बोले, 'धत्! तुम फालतू बात बोलते हो। कहाँ से तुम ये सब बातें सीखकर आये हो?' स्वामीजी ज्यादा बात नहीं बोलते थे। शाम को जब स्वामीजी नीचे गये तो आठ रजाई, आठ गद्दे, आठ मच्छरदानी, आठ गिलास, एक स्टोव, मिट्टी-तेल का टीन और चाय का एक डिब्बा मेरे कमरे में भिजवा दिया! अब मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों भेजा गया है। उन सबको मैंने किनारे पर रख दिया। पड़ा है, पड़ा रहने दो। भण्डारगृह ही सही। फिर कई दिनों के बाद स्वामीजी आये, देखा और बोले, 'चाय का डिब्बा इस्तेमाल करते हो कि नहीं।' मैंने कहा, 'नहीं।'

गुरु लोग बड़े विचित्र प्राणी होते हैं। गुरुजी ने मुझे ऐसा फँसाया कि दूसरे दिन से मैंने चाय बनाना शुरू किया, दरवाजा बन्द करके। एक दिन स्वामीजी आये और पूछा, 'चाय खत्म हो गई या है?' मैंने कहा, 'अभी बची है, रोज थोड़ी-थोड़ी बनाता हूँ।' बोले, 'किसके लिए बनाते हो?' मैंने कहा, 'अपने लिए बनाता हूँ।' बोले, 'अरे, माधवानन्द, कृष्णानन्द आदि को भी बुला लिया करो।' मैंने सोचा यह तो

बड़ा झंझट है। कहाँ यहाँ गिलास भी नहीं था, अब दो-दो आदमियों के लिए चाय बनाओ! एक दिन जब स्वामीजी को पता चला कि इस अंधे चेले के दिमाग में कुछ घुसने वाला नहीं है तब उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'तुम धन-संपदा रख सकते हो, गद्दा-कम्बल रख सकते हो, चाय-चीनी रख सकते हो, दूसरों के लिए जरूर सब कुछ रख सकते हो। तुम भले ही उसका इस्तेमाल मत करो। जो खुद चाय नहीं पीते, वे दूसरों को चाय दे सकते हैं।' फिर पूछा, 'गीता पढ़ते हो?' मैंने कहा, 'हाँ, पढ़ता हूँ।' उन्होंने कहा, 'आज से तुम किताब बन्द कर दो। आज से तुम पैसा रखो, एक कमरे के बदले पाँच कमरे रखो, तीस गद्दे रखो, खूब चीजें रखो। जो भी आदमी आता है उसे चाय बनाकर दो। दवाइयाँ रखो, बीमारों को दो।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा स्वामीजी, मगर इसमें झंझट बहुत होता है, आदमी फँस जाता है।' स्वामीजी बोले, 'नहीं, सेवा की महत्ता को जानना चाहो तो ऐसा ही करो। तुम्हें जब मालूम पड़ जायेगा कि ऐसा करने से दूसरों को आनन्द आता है, दूसरों को सहानुभूति मिलती है तो तुम्हारा आनन्द बढ़ जायेगा।'

इसके बाद मैं आपको बतलाऊँ, मेरा कमरा अजायबघर हो गया! मेरे कमरे में लिफाफा भी मिलता था, डाक टिकट भी मिलती थी, पेन-पेन्सिल भी मिलते थे। कोई मेरे कमरे में आता और कहता कि मुझे स्याही चाहिए तो मैं कहता था वहाँ से ले लो। कोई बोलता, 'स्वामीजी, मेरे पेट में दर्द हो रहा है', मैं कहता,

'ठीक है, यह दवाई ले लो।' तब जाकर मुझे मालूम पड़ा कि त्याग का मतलब वस्तु का त्याग नहीं होता है।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥18.2॥

अभी तुम जो काम करते हो, स्वार्थ के लिए करते हो। स्वार्थ का मतलब केवल अपने लिए। दूसरों के लिए काम करो। *काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः*—विद्वान् लोगों ने कहा है कि काम्य कर्मों का त्याग करो, यही संन्यास है। आपके पास जो धन है, विद्या है, शक्ति है, उसका दूसरों के लिए उपयोग करो, यही कर्मयोग है। जिस कर्म को करने से दूसरों का हित होता हो, फायदा होता हो, उस कर्म से चित्त की शुद्धि होती है। कर्म करते जाओ, चाहे राष्ट्र के लिए करो या समाज के लिए। लेकिन अगर आपके कर्म में स्वार्थ निहित होगा तो उच्च रक्तचाप होगा, मधुमेह होगा। तब मनुष्य गीता की इस बात को समझेगा।

आज इस गीता जयन्ती के पवित्र पर्व पर हम एक ही चीज की प्रार्थना करते हैं और वह यह कि इस देश के लोगों को नि:स्वार्थ काम करने को मिले। हमारे आश्रम में बहुत लोग आते हैं, यूरोप, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया से भी लोग आते हैं। हमारे यहाँ काम बहुत होता है। एक दिन किसी ने मुझे खबर दी कि एक भारतीय लड़का पूछ रहा है कि इतना काम हम क्यों करते हैं, इससे क्या फायदा होता है। हमने जवाब दिया, 'विदेश से जितने लोग आते हैं, उनसे पूछो कि तुम इतना काम क्यों करते हो?' तो उसने बीस विदेशी स्वामियों से पूछा। उन्होंने कहा, 'हम आत्म-शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।' *योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये*—यही गीता का सार है।

इस देश के लोगों को आज निष्काम कर्मयोग के दर्शन को समझना होगा और जिस दिन आप लोग इस दर्शन को समझ जायेंगे, उस दिन आप कर्मयोगी हो जायेंगे और जिस दिन आप कर्मयोगी हो जायेंगे उस दिन से आप जो भी कर्म करेंगे उससे उत्पन्न फल आपको कई गुना ज्यादा मदद करेगा। हमारी यही चाह है कि गीता के कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का संदेश हमारे देश के जन-जन तक पहुँचे। गीता करोड़ों में छपती है, लाखों में बिकती है, मगर उसके आगे हम नहीं कहेंगे। बाइबिल के बाद दूसरी यही किताब है जो ज्यादा छपती है और इसके मानने वाले बाइबिल से भी ज्यादा हैं। पादरी लोग भी मानते हैं। परन्तु यह गीता जिस दिन हमारे जीवन में व्यवहार और क्रिया के रूप में आ जायेगी, उस दिन हम समझेंगे कि हमारे देश का उद्धार हो गया है, इसका विस्तार हो गया है। हमारी कामना है कि हमारा देश कर्मयोगियों का देश बने, हमारे बच्चे कर्मयोग के आदर्श को लेकर जीवित रहें। छोटे-छोटे तुच्छ स्वार्थों की भावना से हम लोग ऊपर उठकर श्रेय का मार्ग प्राप्त करें।

—गीता जयन्ती, दिसम्बर 1976, भोपाल

कर्मयोग मीमांसा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

कर्मयोग ही वह प्रथम योग है जिसे यौगिक उपनिषदों ने योग में पूर्णता हेतु आवश्यक माना है। वैदिक परम्परा में वर्णित यौगिक विद्या के प्रमुख पहलुओं में यह एक है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है, चाहे चेतनतापूर्वक करे या अचेतनतापूर्वक। जब कर्म के साथ योग शब्द जोड़ देते हैं तो कर्मयोग बन जाता है जिसका तात्पर्य ऐसे कर्म से होता है जिसका सम्पादन ध्यानात्मक सजगता से किया जाए। इस प्रकार कर्मयोग वस्तुत: गत्यात्मक ध्यानयोग है।

कर्म की अवधारणा

कर्म के अनेक अर्थ हो सकते हैं। सृष्टि का प्रत्येक पहलू कर्म के नियमों के अनुसार संचालित होता है। कर्म मनुष्य के व्यक्तित्व एवं जीवन से प्राप्त अनुभवों का मूल आधार है। भौतिक जगत् का अनुभव प्राप्त करने हेतु बुद्धि, विचार एवं इन्द्रियों द्वारा जो कार्य किए जाते हैं वे भी कर्म ही हैं। जीवात्मा की तुलना एक ऐसे बच्चे से की जा सकती है जो संसाररूपी क्रीड़ांगन में खेल रहा है और उसके जो खिलौने हैं वे हैं कर्म। कर्म के अंतर्गत विचार, इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, परिस्थितियाँ, भूमिकायें और उनसे सम्बन्धित अन्य पहलू भी आ जाते हैं। यह बच्चा इस सांसारिक क्रीड़ास्थल में इन समस्त खिलौनों के साथ खेल रहा है। ये कर्म उसकी प्रकृति के अभिन्न अंग होते जा रहे हैं, क्योंकि कर्म जीवन के अव्यक्त आयाम के कार्य भी हैं।

दार्शनिक दृष्टि से कर्म का तात्पर्य इच्छा के मूल बीज से है। कर्म की अवधारणा यह है कि इच्छा का यह आद्य बीज प्रत्येक व्यक्ति की नियति, विचार, कार्य और व्यवहार को निदेशित एवं निर्धारित करता है। इच्छा के इस आद्य बीज को अमूर्त कर्म के सन्दर्भ में समझ सकना बहुत कठिन है, क्योंकि यहाँ इसे अव्यक्त प्रकृति, अहंकार और अन्त:करण के प्रसंग में समझना होगा। अत: कर्म की अवधारणा को इस गूढ़ आयाम में समझने के पूर्व सर्वप्रथम भौतिक स्तर पर समझने का प्रयास करना चाहिए। हमें भौतिक आयाम के उन विभिन्न क्षेत्रों का पता लगाना होगा जहाँ हम कर्मों का अनुभव करते हैं।

इन्द्रियों द्वारा सम्पादित कार्य कर्म का एक क्षेत्र है। इन्द्रियों की अवधारणा के अन्तर्गत ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों ही आती हैं। हाथों और पैरों की गतिशीलता से जो कार्य होते हैं वे कर्मेन्द्रियों के कार्यों के उदाहरण हैं। पुन:, आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, जीभ स्वाद लेती है। देखना, सुनना, स्वाद लेना आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सम्पादित कार्य हैं। इनके माध्यम से हमें बाह्य वातावरण का अनुभव होता है। इस तरह के कर्मों का स्वरूप भौतिक होता है। इन्द्रियों का मानसिक पक्ष भी होता है, जिसके अंतर्गत मन के विभिन्न क्रियाकलाप आते हैं जो हमें शरीर तथा बाह्य जगत् के प्रति सजग बनाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और संस्कार, ये सभी कर्मों के हेतु बनते हैं।

रूपान्तरण की प्रक्रिया

हम इन समस्त स्तरों पर बिना किसी सजगता या समझ के एक ही साथ कार्य करते हैं। जब आन्तरिक और बाह्य रूप से सम्पादित हो रहे कार्यों के प्रति सजगता बनी रहती है तब वह ध्यानात्मक सजगता बन जाती है। कर्मयोग को योग के मनोवैज्ञानिक पक्ष के रूप में समझा जा सकता है, क्योंकि गत्यात्मक ध्यान की इस प्रक्रिया में हमें अपने व्यक्तित्व के सूक्ष्म आयामों के प्रति सजग होना पड़ता है। ध्यान की इस गत्यात्मक प्रक्रिया में मन:शक्ति एवं सजगता की जागृति होती है।

उदाहरण के लिए, एक इल्ली जमीन पर रहती है और उड़ नहीं सकती। पर जब यह तितली बन जाती है तो जमीन से ऊपर उठ जाती है और उड़ने लगती है। मनुष्य भी एक इल्ली के समान सदैव जमीन पर रहता है। इल्ली का शरीर बन्धन का प्रतीक है। जब उस इल्ली के रूपान्तरण का समय आता है तो वह अपने चारों तरफ एक कोया का निर्माण कर लेती है। इस अवधि में यह एक परिवर्तन के दौर से गुजरती है और एक सुन्दर तितली के रूप में बाहर निकलती है। कर्मयोग इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

इल्ली जीवात्मा का प्रतीक है जो कर्मों के बन्धन के अधीन है। तितली बनने अर्थात् कर्मों से मुक्त होने के लिए उसे अंतर्मुखी बनना होगा, स्वयं को अपने

व्यक्तित्व के अन्दर समेटना होगा। समेटने की इस प्रक्रिया की तुलना इल्ली की उस अवस्था से की जा सकती है जब वह अपने चारों तरफ कोया का निर्माण करती है। कोया के अन्दर वह अपने शरीर तथा अपनी क्षमता को रूपान्तरित करती है। इसके परिणामस्वरूप उससे बाहर आने के बाद वह रेंगती नहीं बल्कि तितली बनकर उड़ने लगती है।

अभी हम जिस अवस्था में हैं वह बन्धन की अवस्था है। कर्मयोग के अभ्यास द्वारा हम एक परिवर्तन के दौर से गुजरते हैं। निरन्तर प्रयास के द्वारा हम अपने पुराने व्यक्तित्व की सीमाओं को तोड़कर एक नया व्यक्तित्व धारण करते हैं जो मुक्ति की प्राप्ति का साधन बनता है। यही कर्मयोग का लक्ष्य है–अपने कर्मों में सामंजस्य लाते हुए उच्चतर चेतना से संयोग स्थापित करना। कर्मयोग के अभ्यास द्वारा शक्ति और चेतना का बिखराव नियन्त्रित होता है जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः शुद्ध, प्रबुद्ध एवं आनन्दमयी अवस्था की प्राप्ति होती है।

कर्मयोग के विभिन्न स्तर

कर्मयोग का तात्पर्य सतत् ध्यानात्मक सजगता से कार्य सम्पादित करना है। केवल कार्य ही चेतनता पूर्वक नहीं करना चाहिए, बल्कि कार्य के प्रति अपने दृष्टिकोण का भी अवलोकन करते रहना चाहिए। कर्म तो प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा किये जा रहे हैं, कुछ-न-कुछ पाने के लिए, लेकिन कर्मयोग का लक्ष्य होता है सदैव देते रहना। वहाँ प्राप्ति या उपलब्धि का कोई भाव नहीं रहता। कर्मों के प्रति सजग रहने से उनके प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है, दृष्टि व्यापक बनती है। हमें यह देखते रहना चाहिए कि हमारे कार्य अहंकारयुक्त हैं या अहंकाररहित। हमारे प्रायः सभी कार्य अहंकारयुक्त होते हैं। इस प्रकार के कार्य सकाम कर्म कहे जाते हैं। अहंकार रहित कर्म की अनुभूति प्राप्त करने के लिए पहले हमें अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग करना होगा। इस क्षमता के द्वारा परिस्थितियों तथा अनुभवों का विश्लेषण करते हुए अन्ततः हमें स्वयं को एक ऐसे केन्द्र में स्थापित करने का प्रयास करना होगा जो अहंकार से निदेशित न हो।

मान लीजिए आप कागज के एक पन्ने पर अपने कुछ विचारों को लिखकर उसे मेज पर छोड़ देते हैं। हो सकता है कि आप एक उच्च साधक हैं और कर्मयोग, ध्यान, विवेक तथा वैराग्य जैसी बातों के प्रति सजग भी हैं। लेकिन अगर कोई व्यक्ति आपके कमरे में आकर उस पन्ने को पढ़े और कहे कि 'किस मूर्ख ने यह लिखा है?'

तो उस समय आप कैसा अनुभव करेंगे? क्षणभर के लिए तो सदमा लगेगा, क्रोध का अनुभव होगा, क्योंकि आपके अहंकार को एक धक्का लगा है। अगर यह उस व्यक्ति के साथ भी होता है जिसने अपनी सजगता को विकसित कर लिया है तो कल्पना कीजिये कि उस व्यक्ति को क्या होगा जो कर्मयोग का अभ्यास नहीं कर रहा है। वह तत्काल कड़क उठेगा, 'तुमने मुझे मूर्ख कहा!' उस समय एक अति साधारण घटना को लेकर अहंकार का टकराव हो जायेगा। जबकि बात बहुत छोटी-सी थी, आप ने कुछ लिखा और किसी ने उस पर टिप्पणी की।

कर्मयोग में सतही प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि सूक्ष्म प्रतिक्रिया का अवलोकन होना चाहिए। सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करते हुए अहंकारयुक्त कार्यों को अहंकारहित कार्यों में परिवर्तित करना हमारे लिए सम्भव हो सकता है।

वाणी का स्तर–आपसी व्यवहार और वार्त्तालाप

पारम्परिक शास्त्रों के अनुसार कर्मों का सम्पादन वाणी, मन और बुद्धि के द्वारा होता है। वाणी के कर्म का सम्बन्ध दूसरे लोगों के साथ होनेवाले व्यवहार और पारस्परिक अन्त:क्रिया से है। उस समय हम प्राय: अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं। दूसरों के सामने हम एक आदर्श छवि रखना चाहते हैं, जिसके लिए हमें अपने विचार, व्यवहार और प्रतिक्रियाओं में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि मैं स्वयं को एक उत्तम व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ तो कोई मुझे बुरा-भला क्यों न कहे, मैं अपने क्रोध को पी जाऊँगा और मुस्कुराते रहने का प्रयास करूँगा। लेकिन उस समय मेरी सम्पूर्ण सजगता अपने को श्रेष्ठ रूप में

प्रस्तुत करने में लगी हुई है, मैं अपनी प्रतिक्रियाओं का अवलोकन नहीं कर रहा हूँ। दूसरे व्यक्ति के शब्द और भाव मुझे किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं? मैं दूसरों को नकारात्मक रूप से प्रभावित किए बिना अपनी भावनाओं तथा शब्दों को किस प्रकार व्यक्त कर रहा हूँ? इस प्रकार व्यक्तित्वों के बीच होनेवाली अन्त:क्रिया या व्यवहार वस्तुत: कर्मयोग का परीक्षण स्थल है।

पारिवारिक जीवन में भी यह आपसी व्यवहार प्राय: कठिन बन जाता है। उदाहरण के लिए पति-पत्नी के परस्पर संबंध और व्यवहार को ही लीजिए।

शुरू में वे सोचते हैं कि उनका पारस्परिक मिलन प्रेम के आधार पर हुआ है। बाद में एक ही झगड़े से द्वेष उत्पन्न हो जाता है और वे एक-दूसरे से दूर जाने लगते हैं। यह दूरी बढ़ती जाती है और कुछ ही वर्षों में प्रारम्भिक दिनों का प्रेम, घृणा में परिवर्तित हो जाता है। अन्त में तलाक की नौबत आ जाती है। यह अहंकारयुक्त व्यवहार का एक उदाहरण है। यदि हम अपने व्यवहार तथा अभिव्यक्ति में किसी प्रकार सन्तुलन ला सकें तथा उसे अपने जीवनसाथी एवं परिवार के अन्य सदस्यों तक पहुँचा सकें तो इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों से बचा जा सकता है।

एक बार किसी ने स्वामी सत्यानन्द जी से पूछा, 'आजकल संसार में इतने अधिक तलाक क्यों हो रहे हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'इसका कारण यह है कि परिवार के सदस्यों के लक्ष्य समान नहीं हैं।' यदि परिवार के सदस्यों के लक्ष्य समान नहीं होंगे तो विखण्डन अवश्यम्भावी है। पति या पत्नी में से कोई भी अपनी मान्यता को छोड़ना नहीं चाहते। दोनों अपनी मान्यता पर अड़े रहते हैं। दोनों के जीवन के अलग-अलग लक्ष्य होते हैं। कर्मयोग की प्रक्रिया द्वारा साधक अपनी आवश्यकताओं तथा अभिव्यक्तियों में संतुलन लाने की विधि जान सकता है।

मन का स्तर–उद्दीपन और उत्तेजना

मानसिक स्तर पर कर्मों का सम्बन्ध प्रेरणा और उत्तेजना से है। उत्तेजना के अभाव में कर्म नीरस या उबाऊ हो जाते हैं। नीरसता पर काबू पाना कर्मयोग का एक अन्य पहलू है। यह कठिन है, क्योंकि मन स्वभावत: नई-नई उत्तेजनाओं की खोज करते रहता है। एक उत्तेजना की पकड़ ज्यों ही कम होती है, मन दूसरी उत्तेजना की तलाश करने लगता है। इसलिए एक ही तरह का काम कुछ समय के बाद नीरस हो जाता है, बोझ लगने लगता है। व्यक्ति सोचने लगता है कि दिन-रात मुझे एक ही काम करना पड़ता है।

नए उद्दीपनों और उत्तेजनाओं के अभाव में हमारी रचनात्मकता और क्रियाशीलता घटने लगती है, हमारा मन सुस्त और निष्क्रिय हो जाता है, उसकी सकारात्मक प्रकृति समाप्त हो जाती है। यह मानसिक अपूर्णता या त्रुटि की अवस्था है, क्योंकि मन सामंजस्यपूर्ण, सन्तुलित अवस्था में नहीं है। हमारे विचार एक दिशा में जाते हैं, इच्छाएँ दूसरी दिशा में और हमारी कमजोरियाँ हमें एक अन्य दिशा में ले जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप हमारा व्यक्तित्व विखण्डित हो जाता है। मन की इस त्रुटि को दूर करने के लिए मानसिक बिखराव को समझना और रोकना होगा। कर्मयोग में निहित यह प्रारम्भिक सिद्धान्त है।

बुद्धि का स्तर

वाणी और मन के बाद बुद्धि आती है। किसी भी चीज के कारण को जानने का प्रयास करना और देखना कि यह विश्लेषण हमारे जीवन-दर्शन के अनुकूल है या

नहीं, बौद्धिक कर्म है। इसका सम्बन्ध हमारी उन मान्यताओं और अवधारणाओं से है जिन्हें हमने अपनी संस्कृति, समाज तथा धार्मिक पृष्ठभूमि से ग्रहण किया है। हम अपने अन्दर पूर्व से स्थित किसी विचार की तुलना एक नए विचार से करते हैं और तदुपरान्त उसे स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। बौद्धिक कर्मयोग इसी तुलनात्मक प्रक्रिया से संबंधित है।

एक उदाहरण से आप अपनी सांस्कृतिक या सामाजिक मान्यताओं के प्रभाव को समझ सकेंगे। अगर एक भारतीय किसी विदेशी रेस्तोराँ में जाता है और वहाँ काँटा-चम्मच का उपयोग न करके अपने हाथ से ही भोजन करने लगता है तो वहाँ बैठे अन्य सभी लोग उसकी ओर मुड़कर देखने लगेंगे। इसी प्रकार यदि कोई विदेशी एक भारतीय गाँव में जाकर छुरी-काँटा से चपाती खाने लगेगा तो सभी ग्रामीण उसे घूर-घूर कर देखने लगेंगे। दोनों स्थितियों में एक प्रारम्भिक प्रश्न या द्वेष अवश्य ही उत्पन्न होगा, क्योंकि दूसरों की सामाजिक या सांस्कृतिक मान्यताओं और आदतों की समझदारी का अभाव है। इस बौद्धिक समझदारी को विकसित और अभिव्यक्त करना बौद्धिक कर्मयोग के अंतर्गत आता है।

संस्कारों का स्तर

कर्मयोग का एक अन्य पहलू संस्कारों से संबंधित है। संस्कार विचित्र चीज है। यह एक विशाल पुस्तकालय के समान है जिसके अन्दर वह सब कुछ समाहित है, जिसे हमने आज तक ग्रहण या प्राप्त किया है। जब ये संस्कार चेतन मन के स्तर पर प्रकट होते हैं तो बड़े शक्तिशाली होते हैं। वे अनेक रूपों में अभिव्यक्त हो सकते हैं जैसे कोई प्रबल इच्छा या कोई मनोकायिक बीमारी।

योग परम्परा के अनुसार संस्कारों के प्रति सजग होने और उन्हें निष्कासित करने के अनेक तरीके हैं। एक तरीका है किसी संस्कार को फिर से जीना और उसमें समाहित सुख या दु:ख को अनुभव करना। संस्कारों को नि:शेष करने का दूसरा तरीका कर्मयोग का अभ्यास है। जब हम पूर्ण एकाग्रता से कर्मयोग करते हैं तब हमारे अन्दर आन्तरिक शुद्धिकरण की एक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इसके परिणामस्वरूप हमारे व्यक्तित्व की गहराई में छिपे संस्कार पसन्दगी-नापसन्दगी या विचार या भावना के रूप में हमारी चेतना के स्तर पर प्रकट होते हैं।

यह कहना बहुत कठिन है कि परिपक्व होने पर कोई संस्कार किस प्रकार प्रकट होगा और हमारे व्यवहार एवं कर्मों को किस प्रकार प्रभावित करेगा, लेकिन इतना जरूर है कि परिपक्व हो रहे संस्कारों के प्रति सजग होने में कर्मयोग का अभ्यास सहायक होता है। कर्मयोग के द्वारा हमारे मन से संस्कारों के नकारात्मक और अशान्तिकारक प्रभाव दूर होते हैं तथा आन्तरिक शुद्धता, सामंजस्य और सन्तुलन की अवस्था प्राप्त होती है।

अनुभवात्मक ज्ञान

आत्मा की पूर्ण अनुभूति प्राप्ति करने के लिए कर्मयोग एक अति प्रभावशाली तथा प्रामाणिक योग है। जब कर्मयोग के साथ अन्य योग शामिल कर लिए जाते हैं तथा उनके अभ्यास के साथ-साथ कर्मों के प्रति सजगता विकसित होने लगती है तब शुद्धिकरण स्वत: होने लगता है। आश्रम के प्रारम्भिक दिनों में एक व्यक्ति यहाँ आया और उसने सभी आश्रमवासियों को घोर परिश्रम करते हुए पाया। उसने स्वामी सत्यानन्द जी से पूछा, 'ऐसा लगता है कि आप अपने शिष्यों को किसी साधना या शास्त्र की शिक्षा नहीं देते हैं। इस दिन-रात के कर्मयोग से उन्हें क्या प्राप्त होगा?' श्री स्वामीजी ने उत्तर दिया, *'कर्मयोग के द्वारा मेरे शिष्य शुद्धि, संतुलन और सामंजस्य की जो अवस्था प्राप्त करेंगे, वह अन्य लोग बीस जन्मों की साधना और स्वाध्याय के बाद भी नहीं पा सकेंगे।'*

उनका यह विचार आज भी एक खुली चुनौती है। इस सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था। वे कहा करते थे, 'सभी स्तरों पर भीतर से ही शुद्धिकरण होना है।' हो सकता है हम यह न समझ सकें कि भीतर से शुद्धिकरण किस प्रकार प्रारम्भ होता है, पर वास्तव में यह सरल-सी बात है। यदि अपनी साधना में हमें बुरे अनुभव होते हैं तो हम तत्काल उस साधना का त्याग कर देते हैं। यदि किसी व्यक्ति का सम्पर्क हमें अच्छा नहीं लगता तो हम उससे बचना चाहते हैं। साथ-ही-साथ हम शुद्ध और संतुलित होने का प्रयास कर रहे हैं। यह स्वयं में एक विरोधाभास है। एक तरफ हम कहते हैं कि 'प्रत्येक व्यक्ति बराबर है,' और दूसरी ओर कहते हैं कि 'मैं तुमसे ज्यादा जानता हूँ, फिर तुम कौन होते हो यह कहने वाले कि मुझे क्या करना है?' यह बड़ा विरोधात्मक दर्शन है। इसका यही मतलब है कि हमारा ज्ञान मात्र बौद्धिक है, अनुभवात्मक नहीं। कर्मयोग अनुभवात्मक ज्ञान की एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आध्यात्मिक चेतना का विकास और जागरण होता है।

– 'योग दर्शन' से उद्धृत

कर्मयोग और आश्रम

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अनासक्ति की कला

जिस प्रकार आप पाक-विधि, नृत्य अथवा चित्रकला सीखते हैं, उसी प्रकार आप अनासक्ति की कला सीख सकते हैं। लेकिन अफसोस इस बात का कि किसी ने आज तक आपको अनासक्ति की कला सीखने के लिए नहीं कहा। आपको हमेशा आसक्ति की कला सीखने के लिए कहा गया है जिससे आप अधिकाधिक संग्रह करें, अधिकार जतायें, संसार में और अधिक लिप्त हों। आप सोचते हैं कि यदि आप अनासक्त बन गये तो आपका सब कुछ पीछे छूट जाएगा लेकिन यह गलतफहमी है। अनासक्त बनने के लिए आपको कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ेगा। आप तब भी चीजों का संग्रह कर सकते हैं, उनका आनन्द ले सकते हैं, लेकिन अनासक्ति के मनोभाव से युक्त होकर।

मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरी कार, मेरा घर, मेरी नौकरी, मेरा पैसा, मेरा धन, मेरी प्रतिष्ठा–ऐसे ममत्व युक्त विचारों की आखिर जरूरत क्या है? आप ममता के बिना भी उन्हें प्राप्त कर सकते हैं तथा आनन्द से उपभोग कर सकते हैं, लेकिन अनासक्ति की कला को पहले सीखना होगा। अनासक्ति को वैराग्य भी कहते हैं। यह योग की एक बुनियादी जरूरत है। पातंजल योग सूत्रों में कहा भी गया है कि योग में सिद्ध होने के लिए दो बातों का होना आवश्यक है–एक है अभ्यास और दूसरा है वैराग्य– *अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः*।

राग

वैराग्य का अर्थ त्याग नहीं। हमारी यह भ्रान्ति है कि यदि हम अनासक्त बन गये तो हमें उस व्यक्ति को छोड़ना होगा जिससे हम प्रेम करते हैं और उन वस्तुओं का त्याग करना होगा जिनके हम स्वामी हैं। यह एक मिथ्या धारणा है। वैराग्य का अर्थ है राग का अभाव। आपने अगर अच्छे भोजन, अच्छे संबंधों और एक अच्छे जीवन का आनन्द लिया है तो उसी के प्रति राग, उसी की लालसा हर समय बनी रहती है। उन सब चीजों को पुनः प्राप्त करने की एक ललक बनी रहती है। मन उसी चीज पर अटकता है, पुनः उसी की ओर भागता है और यदि उसे पा न सका तो मन दुःखी हो जाता है। यदि मन उसे पुनः प्राप्त कर भी लेता है, तो जल्दी चिन्तित भी हो जाता है कि कहीं उसे खो न बैठे। वास्तव में आप कभी किसी चीज का सच्चा आनन्द उठा ही नहीं पाते। लेकिन यदि आपमें अनासक्ति की भावना है, राग का अभाव है तो आप विषयों को रख भी सकते हैं और उनका पूरा आनन्द भी ले सकते हैं।

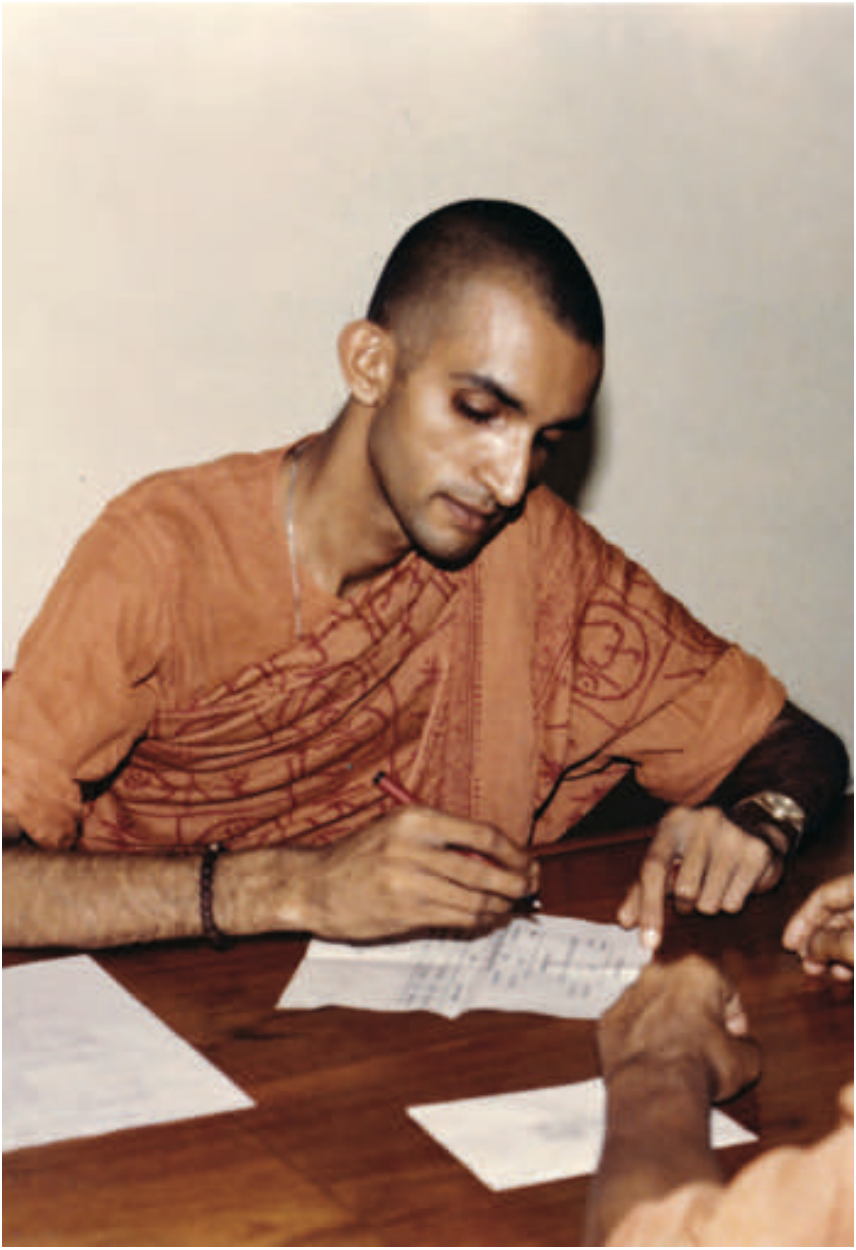

अनासक्ति जीवन के अनुभवों को बेहतर बनाने के लिए एक आवश्यक गुण है। यदि आप जीवन में अनासक्ति विकसित कर पाते हैं तो आप जीवन का आनन्द लेना प्रारम्भ कर देते हैं। आपके मन पर किसी भी चीज की सनक सवार नहीं रहती, बल्कि आप हर चीज का सहज भाव से आनन्द लेते हैं। यह एक कला है जिसे आपको सीखना होगा और जितनी जल्दी सीखेंगे उतना अच्छा होगा, क्योंकि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है ऐसे सद्गुणों को अपनाना कठिन होता है। बच्चों के लिए इस आदत को अपनाना सरल है, क्योंकि वे अभी तक किसी विशेष चीज के आदी नहीं बने। इसलिए बच्चों को अनासक्ति विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

आश्रम की भूमिका

दुनिया में रहकर आप अनासक्ति की कला नहीं सीख सकते, क्योंकि वहाँ इसके बारे में कोई बात नहीं करता, न ही लोग इस शब्द को पसंद करते हैं। अनासक्ति वास्तव में मन की एक स्थिति है। लोग कहते हैं कि यह तो केवल उन तपस्वियों के लिए है जो हिमालय की गुफाओं में रहते हैं। लेकिन उन तपस्वियों को अनासक्ति के अभ्यास की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे तो पहले ही उस मन:स्थिति में हैं। आप अनासक्त होने का ढोंग नहीं कर सकते, इस भावना को स्वत: आपके भीतर जागना और पनपना होगा। यदि आपको पूरा विश्वास है कि अनासक्ति के माध्यम से आप जीवन में प्रसन्नता, पूर्णता एवं एक उच्चतर कोटि के अनुभव को प्राप्त कर सकेंगे, तो आपको एक ऐसा स्थान खोजना होगा जहाँ इस कला का अभ्यास किया जाता है और लोग उसी मन:स्थिति में रहते हैं। वह स्थान है आश्रम।

आश्रम में लोग अनासक्ति की स्थिति में रहने का प्रयास और अभ्यास करते हैं। आश्रम में रहने वाल लोग स्वर्ग से नहीं उतरते, वे उसी समाज से आश्रम में आते हैं जिस समाज में आप लोग रहते हैं। फर्क इतना है कि उन्हें अनासक्ति की उपयोगिता का अहसास हो गया है और वे इसी दिशा में प्रयास करते हैं। अनासक्ति की प्राप्ति अपने कर्तव्यों को करते हुए करनी है, न कि उन्हें त्यागते हुए। आप जहाँ भी हैं, जैसे भी हैं, जो भी कर रहे हैं, उसी स्थिति में आपको अनासक्ति का अभ्यास करना है। जीवन को पूरी तरह जीना है, क्योंकि आप उसी के लिए पैदा हुए हैं, लेकिन इसे एक अलग दृष्टिकोण से जीयें ताकि हर पल खुशी का हो और संघर्षों में भी कुछ सीखने का अनुभव हो। जीवन तो निश्चित रूप से एक संघर्ष है। कठिनाइयाँ और समस्याएँ आपका निरंतर पीछा करती हैं, लेकिन अनासक्ति द्वारा उनका सामना करने का बल मिलता है। आप असंतुलित या विचलित नहीं होते। वह भी एक अनुभव बन जाता है जिसके माध्यम से आप कुछ सीख ग्रहण करते हैं और ज्यादा मजबूत बनते हैं।

जिस व्यक्ति को अनासक्ति के आनंद की झलक मिल गई है और इसे अपने जीवन में विकसित करना चाहता है, उसे आश्रम अवश्य आना चाहिए क्योंकि

आश्रम उसके लिए अवसर प्रदान करता है। परिवार, समाज या व्यवसाय में आपको अनासक्ति की ओर अग्रसर होना असंभव-सा प्रतीत हो सकता है क्योंकि वैसा वातावरण इसका प्रोत्साहन नहीं करता। लेकिन आश्रम में रहने वाले लोगों को कर्मयोग के माध्यम से इसे विकसित करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

–जुलाई 2009, हैरोगेट, इंग्लैण्ड

मैं नौकरी करने के साथ-साथ कर्मयोग का अभ्यास कैसे कर सकता हूँ?

कर्मयोग में मुख्य भावना यह है कि जीवन में किए जाने वाले कर्मों का एक ध्येय होता है, और वह यही कि आपको कुछ सीख मिले और आपको अपने बारे में जानकारी मिले। दुर्भाग्यवश, कर्म करते समय आपको अपने बारे में जानकारी नहीं रहती, बल्कि इस बात का अधिक ध्यान रहता है कि उस कर्म से आपको क्या मिलने वाला है। आप हमेशा फलाकांक्षी रहते हैं। लेकिन कर्मयोग में आपको बतलाया जाता कि फल की बजाय कार्य पर केन्द्रित रहो। अगर आप कार्य पर केन्द्रित हैं तो आप उसे सुचारू रूप से कर सकते हैं। कर्मयोग कर्मों में कुशलता का योग है। कार्य पर केन्द्रित होने के लिए मन को स्थिर और विक्षेपों से मुक्त करना होगा। यही प्रत्याहार की अवस्था है जिसे आप कर्मयोग के माध्यम से भी प्राप्त कर सकते हैं। जब आप कार्य पर पूरी तरह केन्द्रित हो जाते हैं तो वह धारणा है, और धारणा स्वत: ही ध्यान में परिवर्तित हो जाती हैं। आप खुले नेत्रों के साथ भी ध्यान की अवस्था प्राप्त कर लेते हैं।

जब आप इस प्रकार कर्म करते हैं तो कर्मों से छुटकारा मिलता है, जिसे कर्मक्षय कहते हैं। जो कर्म दु:ख और सुख, क्रोध और कष्ट उत्पन्न करते हैं, वे कारण-शरीर से निष्कासित हो जाते हैं। निष्कासन की इस प्रक्रिया को बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। निष्कासन के साथ-साथ आप नए कर्म भी नहीं संचित कर रहे हैं। इसलिए कर्मयोग के अभ्यास से आप प्रसन्न और हल्का अनुभव करते हैं। लेकिन यदि कर्मयोग कै दौरान आपमें विरोध या अहंकार की भावना है तो आपको ऐसा फल नहीं मिलेगा।

भाव परिवर्तन

कर्मयोग का अभ्यास तो आप कहीं भी कर सकते हैं। आप अपनी नौकरी या पेशा भी कर्मयोग के भाव से कर सकते हैं। आपको अपना वेतन मिलेगा, हो सकता है कि पदोन्नति और प्रशंसा भी मिले, यह सब त्यागने की जरूरत नहीं है। आप इसे स्वीकार कर सकते हैं और इसका आनन्द ले सकते हैं, लेकिन वह आपका ध्येय या आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। यह एक सूक्ष्म अन्तर है, एक नवीन मानसिक भाव है, जिसे आपको अपने दैनिक काम-काज के प्रति विकसित करना है।

आश्रम में वे सभी काम-काज किए जाते हैं जो आप अपने घर में करते हैं, जैसे साफ-सफाई, भोजन बनाना, बैंक का काम, रोगियों की देखभाल आदि। लेकिन इन

कार्यों में आसक्ति, स्वामित्व या आकांक्षा की कोई भावना नहीं रहती। रिखिया में हम 1,500 बच्चों की देखभाल करते हैं। उन्हें अंग्रेजी पढ़ाई जाती है और कम्प्यूटर सिखाया जाता है। उन्हें वह सब कुछ दिया जाता है जो आप अपनी सन्तान को देते हैं—सुन्दर कपड़े, खिलौने, कॉपी-किताबें, लेकिन इसलिए नहीं कि वे हमारी सन्तानें हैं। आप ममता की वजह से ऐसा करते हैं, यदि वह बच्चा आपका नहीं तो आप ऐसा नहीं करेंगे।

आखिर ममता और स्वामित्व की यह भावना क्यों? आप खाली हाथ आए और खाली हाथ चले जायेंगे। आप जो श्वास लेते हैं, भोजन ग्रहण करते हैं, वस्त्र धारण करते हैं, सब कुछ तो प्रकृति की देन है। इसका भोग अवश्य करें, लेकिन बिना आसक्ति और ममत्व के। मान लीजिये कि मैं आपको एक आलीशान बंगला देती हूँ और कहती हूँ, 'यह बंगला मेरा है, लेकिन मैं यह स्थान आपके रहने के लिए दे रही हूँ। यहाँ दस साल रहिये।' आप उस बंगले की प्रत्येक सुख-सुविधा का आनन्द लेंगे, लेकिन आपको यह भी मालूम रहेगा कि यह आपका नहीं है, दस साल बाद छोड़ना ही पड़ेगा। संसार के साथ भी यही मनोभाव होना चाहिए, हम यहाँ स्थाई रूप से नहीं आये।

किसी वस्तु को त्यागने की जरूरत नहीं, लेकिन यदि आप अपने भाव में परिवर्तन ला सकते हैं तो जीवन का अनुभव बदल जाएगा। आप प्रत्येक वस्तु का आनन्द ले सकते हैं, बल्कि आप और अधिक आनन्द प्राप्त करेंगे, क्योंकि जब आप में स्वामित्व की भावना रहती है तो वस्तु को खोने का भय और चिन्ता भी सदा बनी रहती है।

आप जहाँ भी हों, जो कुछ भी करें, जीवन में कर्मयोग को शामिल किया जा सकता है। इसे सीखने का स्थान है आश्रम और अभ्यास का स्थान है आपका अपना घर, दफ्तर और समाज। आश्रम में कोई सदा निवास नहीं करता। लोग आश्रम में उन सद्गुणों और मनोभावों को सीखने के लिए आते हैं जो एक सुखी जीवन के लिए आवश्यक हैं।

—जुलाई 2009, लंदन, इंग्लैण्ड

सच्चा कर्मयोग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक बार की बात है, एक जूता और हलवा, एक संत के पास पहुँचे और अपनी व्यथा सुनाने लगे। जूते ने कहा, 'आदरणीय महाराज! मेरी दु:खभरी कहानी सुनिए। मैं अपने मालिक को दिन-रात कंटीली, पथरीली राहों से लेकर आता हूँ। उसके भारी-भरकम शरीर के बोझ तले मेरी हालत खराब हो जाती है। मैं जगह-जगह से फट जाता हूँ। पर इस सबके बावजूद कभी भूलकर भी मेरा मालिक मुझे अपने घर के भीतर नहीं ले जाता, हमेशा मुझे घर के बाहर दरवाजे के पास उतार देता है। मैं इस अपमान को अब सहन नहीं कर पा रहा हूँ। मेरा मालिक मेरी सेवा की कभी सराहना नहीं करता, उसे मेरी जरा भी परवाह नहीं।'

संत ने जूते की कहानी सुनी और फिर बोले, 'मेरे प्यारे जूते भाई, तुम तो वाकई एक बहुत बड़े कर्मयोगी हो। तुम अपनी परवाह किए बिना अपने मालिक की सेवा कर रहे हो, खुद तकलीफ सहकर भी तुम अपने मालिक के पैरों को पत्थरों और काँटों से बचाते हो। तुम तो त्याग की मूर्ति हो, तुम्हारी जय हो! परन्तु तुमने कर्मयोग की साधना को पूरी तरह नहीं समझा है। एक कर्मयोगी को हर काम ऐसी भावना से करना चाहिए जैसे वह ईश्वर की अर्चना कर रहा हो। उसे लेशमात्र भी अपनी परवाह नहीं करनी चाहिए और अपने द्वारा की गई सेवा के लिए सराहना या प्रशंसा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कर्मयोगी को उन लोगों में नारायण-भाव रखना चाहिए जिनकी वह सेवा कर रहा है। अपनी सेवा के लिए सराहना की अपेक्षा रखना तो दूर, उसे इस बात के लिए कृतज्ञ रहना चाहिए कि उसे साक्षात् नारायण की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है।'

'तुम ऐसा मत सोचो कि तुम अपने मालिक की सेवा कर रहे हो, बल्कि ऐसा सोचो कि अपने मालिक में रहने वाले भगवान की सेवा कर रहे हो। प्रभु तो हर प्राणी में हैं। इतना ही नहीं, आदर और सम्मान पाने की लालसा भी छोड़ दो। कर्मयोगी को आदर और अनादर, दोनों को एक समान स्वीकार करना चाहिए। उसे सभी समय मानसिक संतुलन बनाए रखना चाहिए। अगर तुम बिना किसी फल या सम्मान की आशा के साथ, मान-अपमान, सुख-दु:ख एवं हानि-लाभ में एक समान रहते हुए सभी कार्यों को प्रभु की पूजा समझते हुए करो तो तुम्हें प्रभु का आशीष अवश्य प्राप्त होगा और अनंत सुख की प्राप्ति होगी। इसलिए वापस जाओ और पूर्ववत् अपनी सेवा में लग जाओ।'

इसके बाद हलवे ने अपनी दु:खभरी दास्तान का पिटारा खोला। वह कहने लगा, 'महाराज, मेरी व्यथा तो जूते से भी दयनीय है। हलवाई की दुकान में सुन्दर-

सी थाली में सजा हुआ मैं इतना मनमोहक होता हूँ कि हर आने-जाने वाला मुझ पर लालच-भरी निगाह डाले बिना नहीं रह सकता। मुझे लोग इतना पसन्द करते हैं कि मेरा नाम सुनते ही उनके मुँह में पानी भर आता है। कोई भी पर्व-त्यौहार मेरी उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं होता। पर एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण चीज मेरे साथ होती है जिसे मैं सहन नहीं कर पाता हूँ। लोग जब मेरे स्वाद का आनंद लेकर मुझे खा लेते हैं तो उनके पेट में जाने के बाद मुझमें एक भयावह परिवर्तन होने लगता है। कुछ समय उपरान्त पाचन की क्रिया से गुजर कर जब मैं उनके शरीर से मल के रूप में बाहर निकलता हूँ तो लोग मुझे घृणा से देखते हैं। मेरी सारी सुगंध दुर्गंध में बदल जाती है, लोग मुझे देखते ही नाक-भौंह सिकोड़ने लगते हैं। यह अपमान मैं सहन नहीं कर पाता हूँ, कृपया मेरी सहायता करें।'

यह सुनकर संत ने उत्तर दिया, 'प्रिय हलवा महाराज! आप भी जूते जी के समान एक महान् कर्मयोगी हैं। अपने पौष्टिक और स्वादिष्ट गुणों से आप लोगों की कितनी सेवा करते हैं! आप लोगों की क्षुधा को तृप्त करने के लिए अपनी सुन्दरता, पौष्टिकता, स्वाद और मान-सम्मान की आहुति करते हैं, यह निष्काम सेवा का उच्च उदाहरण है। अपनी काया में आने वाले इस परिवर्तन से आप एकदम विचलित मत हों। आप इस काया, इस रूप से अपने आपको अलग करके देखें। आप न तो सुगंधित हलवा हैं, न ही बदबूदार मल। आप इन दोनों से ऊपर शुद्ध-प्रबुद्ध आत्मा है, और इस भाव से ही आपको आगे बढ़ना है। आपका बलिदान लोगों को आनन्द और पौष्टिकता प्रदान करता है, आप साक्षी भाव से इस सारी प्रक्रिया को देखें। यही एक कर्मयोगी की साधना है। अपने भौतिक शरीर से एकरूप होना ही सारी पीड़ा का कारण है। इस मान से, इस झूठी उपाधि से अपने आपको मुक्त करें, तो आप परम आनन्द और शाश्वत शांति प्राप्त करेंगे।'

इन ज्ञानयुक्त विचारों को सुनकर जूता और हलवा महाशय अपनी-अपनी जगह पर वापस आ गए और इस नये मनो-भाव के साथ अपने आपको लोगों की सेवा में लगा दिया और फिर कभी उन्हें किसी प्रकार की शिकायत नहीं हुई।

सत्यम् वाणी

इस साल सीता कल्याणम् में इस क्षेत्र की तीन-चार सौ नववधुओं को सुहाग प्रसाद दिया जाएगा। यह कोई मामूली प्रसाद नहीं, कपड़े-गहने मिलाकर पूरी सुहाग पेटी सत्तर-अस्सी हजार से कम नहीं होती। यहाँ पर हमने यह परम्परा इसलिए स्थापित की है कि सब नववधुएँ सीता जी का प्रतिनिधित्व करती हैं। सीता कल्याणम् में सीता जी को जो भी दहेज मिलता है वह सब इन नववधुओं में बाँट देते हैं। हम यही मानते हैं कि जब लड़कियाँ शादी करके अपने ससुराल जाती हैं तो उन्हें अपने माँ-बाप से खूब मिलना चाहिए। यह माँ-बाप का धर्म है कि वे कंजूसी न करें, बल्कि अपनी लड़की को सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात सब दें क्योंकि लड़की लक्ष्मी का रूप है।

विश्व की आद्या शक्ति देवी स्वरूपा है, और घर की लड़की उसी देवी का अंश होती है। जब वह दूसरे घर में जाती है तो खाली हाथ नहीं जाती। कंगाल घर की लड़की भी कुछ-न-कुछ तो ले जाती है न? सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात—ये लक्ष्मी के प्रतीक हैं। ऐसा नहीं कि एक बंडल पेड़ा उसके साथ बाँध दिया या एक पैकेट हर्बल-टी ही दे दिया। हम तो सबको बोलते हैं कि सीता कल्याणम् में आओ तो भारत की सबसे बढ़िया साड़ी लाओ। यहाँ की लड़कियाँ बहुत गरीब हैं। सब मजदूर हैं, दिनभर की आमदनी तीस-पैंतीस रुपये होती है। मेरे सभी पड़ोसियों का यही हाल है। जिंदगी में एक बार ही सही, पर उन्हें ऐसी साड़ी मिल जाए जो दिल्ली के अमीर घरानों में पहनी जाती है, या ऐसे गहने जो आप अपनी बेटियों को देते हो, तो कितनी खुशी होगी उन्हें!

वेदान्त में सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है आत्मभाव। *अहं ब्रह्मास्मि* भी वेदान्त का एक सिद्धान्त है जिसे आप लोग शायद जानते होंगे, पर उससे ज्यादा जरूरी है आत्मभाव। आत्मभाव का मतलब दूसरों में खुद को देखना। अगर तुम्हारा बेटा बीमार पड़ जाए तो तुम्हें बहुत चिंता हो जाती है। वह सफलता की ऊँचाइयाँ छू ले तो तुम्हारी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। लेकिन क्या दूसरे के बेटे के साथ ऐसा होता है? अगर पड़ोसी का लड़का बीमार हो जाए तो तुम शायद पूछ लो कि क्या हो गया। मगर यह भावनात्मक नहीं, बौद्धिक प्रश्न है। किसी का बेटा बड़ा आदमी बन जाए तो तुम कह दोगे कि बहुत खुशी की बात है, पर क्या वह खुशी तुम सचमुच महसूस करते हो? नहीं, वह एक बौद्धिक प्रतिक्रिया है जिसमें भावना नहीं रहती। जब किसी पराये व्यक्ति के साथ भी तुम भावनात्मक स्तर पर उसी तरह जुड़ सको जैसे अपनी बीवी, बेटे या बेटी से जुड़े हो तो वह होगा आत्मभाव। वेदान्त मार्ग में आगे बढ़ने के लिए यह भाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना आत्मदर्शन सम्भव नहीं। केवल *अहं ब्रह्मास्मि* कह देना काफी नहीं। वह मात्र दार्शनिक सिद्धान्त रहता है। अपने को दूसरों में देखो और दूसरों को अपने में—यह बात ईशावास्य उपनिषद् में कही गई है और गीता में भी।

आत्मभाव बहुत गहन भावना है। ये लड़कियाँ, जो शादी करके दूसरे घर में जा रही हैं, बहुत गरीब परिवारों से हैं। सस्ती साड़ियाँ और नकली जेवर, ये भी इन्हें मिल जाएँ तो बड़ी बात होगी। तो फिर इन्हें बढ़िया साड़ी, बढ़िया गहने, यहाँ तक कि विलायती इत्र क्यों न दिया जाए? ग्रीस, फ्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड में जो सबसे बढ़िया इत्र या साबुन मिलता है, मैं अपने भक्तों से लाने को कहता हूँ। हाँ, मेरे मन में पहली चीज तो जेवर-गहने रहते हैं। किसी भी लड़की की शादी गहनों और मंगलसूत्र के बिना अधूरी है। और वे खालिस सोने के होने चाहिए। मैं अपने उन सभी भक्तों से साफ-साफ कहता हूँ जो अपने लिए ही कमा रहे हैं, अपने बीवी-बच्चों पर ही खर्च कर रहे हैं कि एक महीने के लिए अपनों पर खर्च करना बंद कर दो और उन पैसों से एक छोटी-सी सुहाग-पेटी तैयार कर लो। उसमें एक बढ़िया साड़ी, ब्लाऊज़, पेटीकोट, गहने, चप्पल, साबुन, घड़ी वगैरह हो और साथ ही लड़की के पति के लिए भी इसी तरह का बढ़िया सामान हो। लड़कियों के लिए जो सोलह शृंगार होते हैं न, सभी शामिल हों। इसके अलावा हम सत्रहवाँ शृंगार भी जोड़ देते हैं—सैनिटरी टॉवल, क्योंकि लड़कियों के लिए जरूरी है और गाँव में इन लोगों को मालूम नहीं है। मिलता भी नहीं है। ये लड़कियाँ और उनके माँ-बाप बस दो चीजों से बहुत खुश हो जाते हैं। एक, जब वे गहने देखते हैं तो उनका मुँह खिल जाता है, और दूसरा, सैनिटरी टॉवल देखकर भी उन्हें बहुत खुशी होती है कि चलो भाई, एक झंझट तो इनकी खत्म हुई।

यह आत्मभाव हमें देवघर में आकर हुआ। इससे पहले तो हम बस बोलते जाते थे, ऐसी-ऐसी चीजों पर भी जिनके बारे में कुछ मालूम नहीं था। भगवान पर भी बहुत

कुछ बोला है। विद्वान् लोग पहले कहते हैं कि भगवान अज्ञेय है, उसको जाना नहीं जा सकता। फिर कहते हैं अनन्त है, अनादि है। अरे, अगर भगवान अज्ञेय है, मन और वाणी के परे है तो कैसे पता चला अनन्त और अनादि है? तुम्हें यही कैसे पता चला कि भगवान एक है। पता नहीं, तैंतीस करोड़ भी हो सकते हैं, तुमने कुछ तो देखा नहीं है। हम सब इसी तरह के विचित्र बुद्धिवादी हैं।

लेकिन देवघर आने के बाद हमें स्पष्ट आवाज़ सुनाई दी, जिसे तुम लोग आकाशवाणी कहते हो। हमने आकाशवाणी कई बार सुनी है। जैसे हमारी-तुम्हारी बातचीत चल रही है वैसे ही एकदम स्पष्ट शब्द होते हैं। तब हमने अपने आप से कहा, 'सारे संसार का ज्ञान एक तरफ और अपने पड़ोसियों के प्रति संवेदना, करुणा और आत्मभावना दूसरी तरफ—सत्यानन्द चुन ले!' पहले रास्ते से अपनी मंजिल पहुँचोगे, जरूरी नहीं है, लेकिन जो अपने को दूसरों के साथ जोड़ सकता है, एक कर सकता है, वह उनका हो जाता है। अगर तुम्हारे-हमारे बीच प्रेम हो जाए, तुम्हारा दिल हममें लग जाए, हमारा दिल तुममें लग जाए तब हम दोनों एक हो गये न? दो कहाँ रहे फिर। शरीर दो रहे, पर आत्मा तो एक हो गई न? उसी तरह अगर हम दूसरों से अपने को जोड़ सकें तो हमें अद्वैत की अनुभूति हो जाएगी। द्वैत फिर रहेगा कहाँ?

दूसरों के साथ अपने को जोड़ना बुद्धि नहीं, भावना के स्तर पर होना चाहिए। और हमें यह रास्ता बहुत अच्छा लगा। हम हमेशा अपने से प्रश्न करते थे, 'सत्यानन्द! तुम बोलते तो बहुत हो, निष्ठा भी बहुत है, मगर तुम्हें जानकारी कितनी है? तुमने किताबें तो बहुत लिखी हैं, व्याख्यान भी बहुत दिए हैं। किसी भी विषय पर तुम बोल सकते हो। ईश्वर के बारे में तो घण्टों बोल सकते हो, पर सच बोलो, तुम्हें अनुभव कितना है?' जवाब मिलता था—सिफर, शून्य, ज़ीरो। हम केवल तोते की तरह बोलने वाले थे, पर यहाँ आने के बाद हम कह सकते हैं, 'अब हम जानते हैं। जो दिखाई देता है उसके परे की चीजों को देख सकते हैं।'

इसलिये हमने सीता-कल्याणम् का यह कार्यक्रम पिछले साल से शुरू किया है। सुहाग की पेटियाँ ट्रकों में भर-भर कर आती हैं, और मजे की बात यह है कि उन लड़कियों ने हमें न कभी देखा है, न ही देखेंगी। हम भी अपनी जिन्दगी में उन्हें देखेंगे या नहीं, पता नहीं। जितनी लड़कियों को अभी तक दिया है, आमना-सामना

कभी नहीं हुआ है। कहीं हम जाएँगे तो पता नहीं पहचानेंगी या नहीं कि रिखिया वाले स्वामीजी हैं। मतलब किसी के प्रति एकता का भाव स्थापित करने के लिये उसके साथ प्रत्यक्ष स्तर पर मिलने की जरूरत नहीं। हमारे और भगवान के बीच, या हमारे और तुम्हारे बीच एकता का संबंध शरीर के स्तर पर नहीं, आत्मा के स्तर पर होता है।

भगवान की सृष्टि और उनका अवतार

यह दुनिया तो भगवान का बगीचा है। यहाँ एक तरफ काँटे वाला गुलाब भी होता है, काँटे वाला बबूल भी होता है, जहरीला साँप भी होता है, तो दूसरी तरफ अमृत सदृश तुलसी भी होती है, अमृत जैसा बेलपत्ता भी होता है। किसी बगीचे में खाली आम के ही पेड़ हों तो वह बगीचा थोड़े ही है। भगवान के घर में विविधता है। देवता भी यहीं है, राक्षस भी यहीं है। यह सब भगवान की सृष्टि है और भगवान खुद कुछ नहीं करते, वे अकर्ता हैं। भगवान सिर्फ संकल्प कर सकते हैं, और कुछ नहीं। क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति देवी में है, प्रकृति में है। भगवान अगर किसी रूप में अवतार लेना चाहते हैं तो सिर्फ संकल्प की क्षमता है उनमें। बिना प्रकृति के सहयोग के वे अवतार नहीं ले सकते। और जैसे ही वे प्रकृति के साथ जुड़ते हैं, जन्म-मरण जैसे सभी प्राकृतिक धर्मों के अधीन हो जाते हैं।

जो कुछ भी होता है, प्रकृति करती है, और यह प्रकृति तीन गुणों वाली है– सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। दुनिया में सभी अच्छी-बुरी चीजें इन तीन गुणों के दायरे में आती हैं। इन तीन गुणों का विनाश नहीं होता, हाँ, अनुपात जरूर बदलता है। जिस दिन विनाश हो जायेगा उस दिन सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी।

भगवान जब संकल्प लेकर अवतार लेते हैं तो क्या अपने लिये करते हैं?

नहीं, भगवान का अपना कोई संकल्प नहीं होता, भक्त भगवान को संकल्प लेने के लिए मजबूर करता है। जैसे यहाँ बल्ब है और बिजली भी है, दोनों आपस में जुड़े भी हैं, पर वह बल्ब अपने आप नहीं जलेगा, किसी को स्विच ऑन करना पड़ेगा। वैसे ही जब-जब भक्त भगवान को विवश करता है तब भगवान के अन्दर जो संकल्प का बीज होता है वह जाग्रत होता है। ज्यादातर लोग तो यही कहते हैं कि भगवान का अवतार दुष्टों के विनाश के लिये होता है, लेकिन हम मानते हैं कि भगवान का अवतार भक्तों की मदद के लिए होता है।

मान लो तुम सुन्दर कपड़ा बनाते हो और उसके बारे में लोगों को बतला देते हो। लेकिन तुम कपड़ा दिखाओगे तभी तो उसको मोल लेंगे न? अभी तक तो तुम निर्गुण की बात ही कर रहे थे–अच्छा कपड़ा, अच्छा कपड़ा, मगर कहाँ है वह कपड़ा? दिखता तो नहीं है। इसी तरह भगवान भक्तों को सहारा देने के लिये अवतार धारण करते हैं और लीला करते हैं, ताकि हम उनका ध्यान कर सकें, उनकी लीला का ज्ञान

प्राप्त कर सकें और उनके भरोसे अपनी साठ-सत्तर साल की जो थोड़ी-सी जिन्दगी है, उसे शान्ति से निभा सकें। नहीं तो जिन्दगी भर निन्यानवे का फेर ही लगा रहता है।

भगवान भक्तों के कातर आग्रह से आते हैं–'हे भगवान! तुम निर्गुण हो, सब जगह रहते हो, पर हमें तो कहीं दिखते नहीं। तुमसे हम क्या प्रार्थना करें? हमें कुछ समझ में नहीं आता।' तब भगवान कहते हैं, 'ठीक है, मैं आ जाता हूँ राम के रूप में। जाओ खूब कीर्तन करो, रामायण पढ़ो।' भक्त को एक आधार मिल जाता है। अगर भगवान अवतार नहीं लेते तो तुम उनके बारे में क्या बोल पाते? तुम अद्वैत हो, अजर हो, अमर हो, अनन्य हो–बस सबमें 'अ' लगाते जाओ। भगवान ने अवतार लेकर भक्तों को भक्ति का एक आधार दिया, सच्ची बात तो यही है।

भक्तों के आग्रह से भगवान के अन्दर संकल्प जागता है। तब वे प्रकृति का आश्रय लेकर उतरते हैं। जब उतरते हैं तब प्रकृति के धर्मों के अनुसार चलते हैं क्योंकि भगवान कर्त्ता नहीं हैं। हाथ भी नहीं हिला सकते, खा भी नहीं सकते। वह सब प्रकृति करती है। खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना, गाना, नाचना, जंगल में जाना, लड़ाई करना, सीता से प्रेम करना या धनुष भंग करना—ये प्रकृति के धर्म हैं। प्रकृति पर आश्रित होकर भगवान जो कुछ करते हैं उसे लीला कहते हैं। जैसे फिल्मों में अभिनेता कभी भिखारी की भूमिका अदा करता है तो कभी डाकू की, कभी राजा की तो कभी चोर की, लेकिन वास्तव में तो वह अभिनेता ऐसा नहीं है न?

संगीत का दौर

संगीत शास्त्र विकास के एक मार्ग पर चल रहा है। किसी भी विद्या में ठहराव नहीं होना चाहिये। पानी अगर बहता नहीं है तो सड़ जाता है। जो संगीत शास्त्र आज है वह दो हजार साल पहले ऐसा नहीं था। चाहे वह संगीत हो या साहित्य, कला या विज्ञान, उसमें नित्य-निरंतर विकास होना चाहिये और वह होना चाहिये मनुष्य की स्थिति के मुताबिक। आज का इन्सान तेज-तर्रार है। हर चीज तेज है, गाड़ी भी तेज चलती है, हवाई जहाज भी तेज चलता है। खाना भी तेज बनता है, टट्टी भी जल्दी करके आ जाते हो। पहले तो आधा घण्टा मैदान पहुँचने में लगता था और आधा घण्टा वापस आने में लगता था। अब तो पाँच मिनट में सब हो जाता है। सब चीजें तेज हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य का मन भी तेज चीज में ही रुकता है, वरना नहीं रुक पाता है।

जितने भी आध्यात्मिक या धार्मिक किस्म के संगीत हैं, उन सबके सामने आज बहुत बड़ी चुनौती है, क्योंकि यह जो पाश्चात्य संगीत आया है जिसे तुम पॉप म्यूज़िक कहते हो, यह न आध्यात्मिक है, न धार्मिक। मैंने संगीत का कुछ अध्ययन किया है, इसलिए बतला रहा हूँ। यह पाश्चात्य संगीत नहीं है, इस संगीत का जन्म हुआ है अफ्रीका में। पश्चिम से होकर आ रहा है इसलिए तुम इसे पाश्चात्य संगीत कहते हो। पर यह असल में वेस्टर्न म्यूज़िक नहीं, नीग्रो म्यूज़िक है। नीग्रो का मतलब होता है काला। यह काले लोगों का संगीत है। अभी भी तुम अफ्रीका में जाओ, वहाँ के गाँवों में लोग जब हजारों की संख्या में गाते हैं और नाचते हैं तो क्या गजब की लय-ताल रहती है। जो संगीत आज यहाँ आया है और सिनेमा में आजकल जो नृत्य देखते हो, वह दायें-बायें-आगे-पीछे उछलने-कूदने वाला, वह सब मूलत: अफ्रीका का है।

बहुत पहले यह संगीत अफ्रीका और एशिया में एक जगह था, जब गोण्डवाना द्वीप हुआ करता था। मैं तुम्हें इतिहास की बात बता रहा हूँ, दो हजार साल पुरानी नहीं, चालीस-पचास हजार साल पुरानी। तब वर्तमान ऑस्ट्रेलिया, बाली, जावा,

सुमात्रा, दक्षिण भारत, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और अफ्रीका एक महाद्वीप था जिसका नाम था गोण्डवाना। बाद में भौगोलिक परिस्थितियों के बदलने से अफ्रीका अलग हो गया, ऑस्ट्रेलिया अलग हो गया, दक्षिण भारत अलग हो गया। वह उत्तर भारत से मिल गया, विंध्याचल ऊपर उठ गया, बंगाल की खाड़ी बन गई, मगर लोग वही रहे, संगीत की लय वही रही। गाँवों में आज भी लोग ऐसे ही नाचकर नहीं गाते हैं क्या?

लोक संगीत एक ऊँची चीज है, इस बात का ख्याल रखो। कभी संगीत के रास्ते में जाओ तो ऐसा संगीत बनाओ कि लोग झूमने-नाचने पर मजबूर हो जाएँ। वह शराब नहीं जो आदमी को मस्त न करे, वह जहर नहीं जो आदमी को मारे नहीं, और वह संगीत नहीं जो आदमी को नचा न सके। वह संगीत ही कैसा जो आदमी को सुला दे! संगीत सुलाने के लिये नहीं होता है, संगीत नचाने के लिये होता है। 'पी ले पी ले हरिनाम का प्याला, उसे पीकर और पिलाकर हो जा मतवाला'—इतना गाओ कि नशा चढ़ जाए।

चाहे वह संगीत हो या साहित्य या कला, ये निरंतर विकासशील विद्याएँ हैं। जो हिन्दी तुम आज बोल रहे हो, चार-पाँच सौ साल पहले ऐसी हिन्दी थोड़े ही बोली जाती थी। जो संस्कृत आज बोलते हैं, वह पहले ऐसी नहीं थी। वेदों के समय दूसरी संस्कृत बोली जाती थी। जो कपड़े तुम्हारे दादा-परदादा पहनते थे आज तुम पहनते हो क्या? वस्त्रों में, घर निर्माण कला में, भोजन बनाने के तरीके में, औषधि विज्ञान में, हर जगह परिवर्तन हुआ है, विकास हुआ है। संगीत में भी जरूर होना चाहिये। जिप्सी लोग, जो कई सदियों पहले हिन्दुस्तान छोड़कर यूरोप गये, वहाँ भी गाना गाते हैं, नाचते हैं। रूस में रहते हैं, बल्गेरिया में रहते हैं, वे कहीं एक जगह टिकते नहीं हैं। उनकी परम्पराएँ, उनका संगीत हिन्दुस्तान जैसा है। फर्क इतना है कि अब वे लोग ऊँची एड़ी वाले जूते पहनकर नाचते हैं।

आने वाली शताब्दी की मुख्य वस्तु है संगीत। वही सबसे अधिक लोकप्रिय होगा। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी यही कहा है कि कलियुग में संकीर्तन से ही मुक्ति मिलेगी। इसलिये संगीत को तो तुम लोग एकदम जमाकर रखो। चाहे लड़का हो या लड़की, लड़की ससुराल जाए या कहीं भी जाए, संगीत हमारे घर की संस्कृति बननी चाहिये, सबको सीखना चाहिये। साहित्य, संगीत और कला के बिना मनुष्य की अपनी पहचान नहीं है। *साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः*—ऐसे मनुष्य बिना पूँछ और सींग के जानवर ही हैं। *ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति*—वे दुनिया के लिये भार हैं और मनुष्य के रूप में घूमने वाले जानवर ही हैं। ऐसा कहा है भर्तृहरि ने।

हमारे यहाँ चैतन्य महाप्रभु और रामकृष्ण परमहंस जैसे बहुत-से अच्छे संत-महात्मा हुए हैं जो कीर्तन करते-करते बेहोश हो जाते थे, उन्हें भाव-समाधि लग

जाती थी। मीराबाई कीर्तन में इतनी मस्त हो गई कि आखिर उसे घर छोड़ना पड़ा। मीराबाई कीर्तन से बहुत प्रेम करती थी, पर राजमहल के लोग उसके रहन-सहन को पसंद नहीं करते थे। मंदिरों में जहाँ भी कीर्तन होता, वहाँ जाती और नाचने लगती थी। साधारण घर का आदमी भी अपनी बहू का नाचना पसंद नहीं करेगा, फिर वह तो चित्तौड़ की महारानी थी। एतराज होने लगा। एतराज बड़ा तो राजमहल वालों ने कहा कि हटा ही दो न, खत्म कर दो। राणा ने विष का प्याला भेजा, बहुत तरीकों से मारने की कोशिश की गई, पर किसी तरह वह बच निकली। कहते हैं अन्त में मीराबाई कीर्तन करते-करते निर्गुण में समा गई, उसका शरीर भी नहीं मिला।

आज पश्चिम के लोग भी बड़े कीर्तन-प्रेमी हो गये हैं। वहाँ भजन नहीं, नाम-संकीर्तन चलता है, भगवान का नाम बार-बार दुहराया जाता है। यह नाम-संकीर्तन बहुत लोकप्रिय हो गया है। बहुत-से संन्यासी जो अच्छा गाते हैं, यहाँ से वहाँ जाते हैं, कैसेट-सीडी बनाकर बेचते हैं। बिकता भी अच्छा है।

स्वयं को जानना

बीमारी अगर शरीर में होती है तो उसे दूर करने के लिये आसन-प्राणायाम हैं। पर केवल शरीर बीमार होता है, ऐसी बात तो नहीं है। मन भी बीमार होता है। बीमार मन के उपचार के लिये धारणा-ध्यान है। केवल मन ही बीमार नहीं होता, बल्कि मनुष्य की जीवात्मा, उसका पूरा व्यक्तित्व बीमार है। उसके लिये योग से काम नहीं चलता। तब उसे सत्संग में जाना चाहिये जहाँ उसे प्रेरणा मिले, अपने आप को देखने-जानने का मौका मिले। जब व्यक्तित्व बीमार होता है तो आदमी यह नहीं कहता कि बीमार हो गया, बल्कि कहता है कि बहुत दु:खी हूँ। शरीर में कुछ हुआ तो कहेगा यहाँ बीमारी

है, वहाँ बीमारी है, लेकिन जब आदमी का व्यक्तित्व बीमार हो जाता है तब बोलता है बहुत कष्ट में हूँ। क्या कष्ट है? लड़का नालायक निकल गया या पति घर में रोज पीकर आता है, बड़ा तंग करता है। यह भी बीमारी है और इस बीमारी का उपचार योग के पास नहीं है। दुनिया में ज्यादा लोग इसी के शिकार हैं। मूल समस्या यही है कि मनुष्य की जीवात्मा बीमार है। पैर का दर्द, नाक का दर्द, यह कोई बड़ी बीमारी नहीं है। ऐसी छोटी-मोटी बीमारियों को आसन-प्राणायाम जैसे छोटे उपायों से दूर करते हैं। बड़ी बीमारी का उपाय है सत्संग, विवेक।

मुनष्य की सबसे बड़ी कमजोरी, सबसे बड़ी सीमा यह है कि उसने अपना चेहरा अपनी आँखों से कभी देखा ही नहीं। आईने में जो देखा है वह तुम्हारा चेहरा थोड़े ही है, चेहरे का प्रतिबिम्ब है। तुमने अपना चेहरा अपनी आँखों से नहीं देखा। किसी ने नहीं देखा। उसी तरह से एक मजबूरी यह भी है कि मनुष्य अपने मन को जानता नहीं। मन एक चीज है और विचार दूसरी चीज, जैसे यह बल्ब और उसका उजाला। तुम बल्ब नहीं, उसके उजाले को देख रहे हो। इसी तरह तुम अपने विचारों को देख रहे हो कि गुस्सा आ रहा है, चिन्ता हो रही है, थकावट लग रही है, तनाव हो रहा है, मगर तुम अपने मन को नहीं देख सकते। मन को देखना सबसे कठिन काम है। जिसने अपने मन को देख लिया वह ईश्वर के समान हो जाता है। मन को देखना, इसी को सुकरात बोलता था Know thyself, इसको रमण महर्षि तमिल में बोलते थे, 'नान यार' और इसी को उपनिषद् कहते हैं– *आत्मानं विजानीमहि।* मैं कौन हूँ, यह जानो।

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि यह जानने के लिए इसकी कक्षाएँ लेनी पड़ेंगी। जैसे बी.ए. या बी.कॉम. करने के लिये पहले प्राइमरी स्कूल में भर्ती होना पड़ता है, सीधे ही कॉलेज नहीं जा सकते, वैसे ही अध्यात्म में भी दर्जे होते हैं। पहली कक्षा है सेवा, दूसरी है प्रेम करना और तीसरा क्लास है केवल लेना ही नहीं, बल्कि देना भी। सेवा, प्रेम और दान–ये तीन हो गये तुम्हारा मैट्रिकुलेशन। अब इसके बाद आई कॉलेज की पढ़ाई–आत्मशुद्धि और ध्यान। उसके बाद अपनी आत्मा का दर्शन होता है, तब जाकर मनुष्य अपने मन को जानता है। जिस दिन मन का पता चल जाता है, उस दिन वह आदमी एटम-बम की तरह बहुत शक्तिशाली हो जाता है।

अपने को जानना दुनिया में सबसे कठिन चीज है। लाखों में शायद कोई एक अपने को जानता है। मनोविज्ञान में मनुष्य अपने विचारों को, अपनी कुण्ठाओं को जानता है, पर मूल मन को नहीं जानता। कमल को तो देख लिया, मगर जिस कीचड़ से कमल निकला उस कीचड़ को नहीं देखा। इस मन के बारे में विचित्र बात यह है कि एकदम कीचड़ की तरह है और इसके तीन अवयव हैं–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीन गुणों से मिलकर मन बना है। इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–इन पाँच तत्त्वों का संतुलित योगदान है। इसीलिये योगियों और संत-महात्माओं ने जितनी साधनाएँ बताई हैं वे इन तत्त्वों को लेकर ही हैं।

आसन-प्राणायाम सिखाओ, शरीर की बीमारी ठीक हो जायेगी, पर व्यक्तित्व कैसे ठीक हो? उसके लिए है सत्संग। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने कहा है– *बिनु सतसंग बिबेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।* बिना सत्संग के विवेक नहीं होता। विवेक का मतलब होता है भले-बुरे की पहचान, खोटे-खरे की पहचान। और यह सब होता है भगवत्कृपा से। सत्संग में थोड़ा समय भी अगर आदमी दे, एक घड़ी, आधी घड़ी या आधी की भी आधी घड़ी तो अनेकों उपाधियाँ दूर होती हैं– 'तुलसी संगत साधु की हरे कोटि उपाधि'।

हमारे यहाँ तीन प्रकार की बीमारियाँ मानी जाती हैं– आधि, व्याधि और उपाधि। बुखार हो गया, पैर में दर्द हो गया, यह है व्याधि। मन में चिन्ता हो रही है, नींद नहीं आ रही है, ऐसी मानसिक बीमारी को कहते हैं आधि, और जब पूरा व्यक्तित्व बीमार हो जाता है तो उसको कहते हैं उपाधि। जैसे कोई अपने को कहे, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर मल्होत्रा, तो नाम सिर्फ मिस्टर मल्होत्रा है जबकि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट उपाधि है जो नाम के ऊपर जोड़ी जाती है। इसी तरह जब आदमी अपने ऊपर एक उपाधि जोड़ लेता है कि मैं जीव हूँ तो उससे फिर अहंकार का भाव आ जाता है। आदमी मानने लगता है कि मैं विद्वान् हूँ या मैं मूर्ख हूँ या मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ या मैं छोटा आदमी हूँ या मैं बदमाश आदमी हूँ या मेरे जैसा दुनिया में कौन है। अपने को कुछ मान लेना, अभिमान करना, इसे उपाधि कहते हैं। यह मेरा बेटा है, यह मेरी बेटी है, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा भाई है, यह मेरा बाप है, यह सब भी उपाधि के अंतर्गत आता है। मनुष्य जब किसी वस्तु को अपने मन में बसा लेता है तो उसे उपाधि कहते हैं। तुम दु:खी नहीं हो, पर तुमने अपने को दु:खी मान लिया। इसी तरह तुमने अपने को स्त्री मान लिया या पुरुष मान लिया, तुमने अपने को महान् मान लिया या अपराधी मान लिया। जो नहीं है, उसको मान लेना अभिमान है, और यही अभिमान उपाधि है। कई लोग अपने नाम के आगे लिखते हैं 'भूतपूर्व मंत्री' या 'भूतपूर्व कलेक्टर'। अरे सीधा नाम लिखो, भूतपूर्व कलेक्टर लिखने की क्या जरूरत है? यह जो पूँछ तुम्हारे साथ चलती है वह है उपाधि।

भारत का भविष्य

हम बचपन में गाँधी जी के सेवाग्राम आश्रम गए थे, फिर वर्धा आश्रम भी गए थे। यह करीब साठ साल पहले की बात है। खैर उस वक्त की तो बात ही दूसरी थी, वह जमाना ही दूसरा था, मगर आशा-निराशा के बीच यह देश तब भी झूल रहा था। और आज भी यह देश आशा और निराशा के बीच झूल रहा है कि आगे क्या होगा। उस वक्त की मूल समस्या थी विदेशी सरकार, कैसे उसको हटाएँ। कोई बोलता बन्दूक से हटाओ, कोई कहता छापामारी युद्ध करो तो कोई कहता था, 'अरे काहे को हटाओगे? टाई-कोट पहनकर, बाबू साहब बनकर अंग्रेजों से हाथ मिला

लो।' लेकिन जो रास्ता गाँधी जी ने दिया वह हिन्दुस्तान की जनता को बहुत पसंद आया, क्योंकि वह रास्ता राजनीति पर नहीं, यथार्थ पर आधारित था। उस समय कपड़े मैनचेस्टर से बनकर आते थे, लाखों-करोड़ों लोग अपनी जीविका से वंचित हो चुके थे। ऐसी हालत में उन्होंने घर-घर में चर्खा चलवा दिया। चर्खे के माध्यम से गाँधी जी घर-घर पहुँच गये। उन्होंने लोगों को बताया कि हाँ, यह एक रास्ता है। लोगों के मन में आशा की किरण जागी, और अच्छे-अच्छे लोग, चाहे नेहरु हों या सरदार पटेल, सब उनके पीछे चले। सबको लगा कि यह आदमी ठीक बात बोलता है। हालाँकि सुभाषचन्द्र बोस जैसे क्रांतिकारियों को भी यह देश मानता है, मगर व्यावहारिक रास्ता दिया गाँधी जी ने।

हमें याद है कि उस वक्त भी 'इस देश का क्या होगा' यही प्रश्न उठता था। शायद आज भी लोगों के मन में यही प्रश्न उठ रहा है। मगर आज समस्या का कारण विदेशी सरकार नहीं है। कारण कुछ और है। हम यह नहीं कहेंगे कि वह भ्रष्टाचार है, यह शब्द तो बहुत मामूली है, शरीर में फोड़े की तरह है। फोड़ा हो गया तो इलाज करने से क्या फायदा, तुम्हारे खून में ही खराबी है। दवा करोगे तो यही होगा कि फोड़ा एक जगह से हटकर दूसरी जगह पर हो जायेगा। मूल गलती कहीं और है।

एक बार जब स्वामी रामतीर्थ जापान गये थे तो वहाँ के राजभवन में ठहरे। वहाँ उन्होंने देखा कि मेज पर चिनार के छोटे-छोटे पेड़ रखे हैं, करीब एक-डेढ फीट ऊँचे। उनके मेज़बान ने जब पूछा कि आप क्या देख रहे हैं, तो वे बोले, 'चिनार का पेड़ देख रहा हूँ। बहुत छोटा है, लगता है आप ने अभी लगाया है।' मेज़बान ने कहा, 'नहीं, ढाई सौ साल पुराना है।' 'ढाई सौ साल! हमारे यहाँ तो दस साल में चालीस फीट ऊँचे हो जाते हैं।' 'यह बोन्साई है।' 'बोन्साई क्या होता है?' 'इनकी तीन जड़ें काट देते हैं नीचे से। पेड़ जीता रहता है, मगर बढ़ता नहीं।'

बस यही हाल है यहाँ के लोगों का। आचरण, व्यक्तित्व और विचार—ये मनुष्य जीवन की तीन जड़ें होती हैं, जिनमें दो जड़ें दिखाई देती हैं, एक दिखाई नहीं देती। मनुष्य का आचार और उसका व्यक्तित्व दिखाई देता है, उसके विचार दिखाई नहीं देते। ये तीनों जड़ें काट दी गई हैं।

तो क्या करना चाहिये?

गमले से निकलो और कहीं जंगली धरती पर बैठ जाओ हमलोगों की तरह। हमलोग जंगली धरती के हैं। 'मैं जंगल का फूल रहा हूँ, उपवन का उल्लास नहीं हूँ।' मैं बगीचे का फूल नहीं, जंगल का फूल हूँ। अगर मैं बगीचे का फूल रहता तो शायद तहसीलदार बनता या सब-इंस्पेक्टर। जंगल का फूल रहा तो जो बनना चाहा सो बना। कभी लेखक बनना चाहा तो लेखक बन गया, कभी विचार हुआ दुनियाभर में घूमो और जितने भी लाइब्रेरी-म्यूज़ियम है उन्हें जाकर देखो, वह भी कर लिया।

कभी सोचा कि सभी देशों की संस्कृति देखकर आते हैं तो वह भी कर लिया। अन्त में सोचा, सब छोड़ दो और भगवान का भजन करो, वह भी कर रहा हूँ। तुम लोग चाहते हुए भी यह सब नहीं कर पाओगे क्योंकि बगीचे के फूल हो, उपवन के उल्लास हो।

आचरण, व्यक्तित्व और विचार—ये तीन चीजें मनुष्य को परिभाषित करती हैं। गुलाम उसी को कहते हैं जिसकी इन तीन चीजों में आज़ादी नहीं। हमारे आचरण, हमारे व्यक्तित्व और हमारे विचारों में एक गुलामी जैसी है। स्वतंत्र चिन्तन कहीं नहीं हो पा रहा है। आज कोई ऐसा माई का लाल नहीं जो कहे शादी नहीं करूँगा। कोई मेरे जैसा अलबेला निकल गया तो सोच लिया। आज कोई सोच ही नहीं सकता कि शादी के बिना भी जिन्दगी बीत सकती है। कोई सोच ही नहीं सकता कि शादी के बिना बच्चा हो सकता है। अरे, बिना शादी के बाल-बच्चे नहीं हो सकते क्या? जब हजारों चेले हों तो कोई बच्चा पैदा क्यों करेगा? ताकि बुढ़ापे में सेवा करे और मरने के बाद आग दे? ये सब चेले मेरी सेवा भी कर रहे हैं और जहाँ तक आग देने का सवाल है, मैं तो जमीन में सोने वाला हूँ। कहने का मतलब यह कि लोगों का सोच-विचार का अपना कोई तरीका नहीं है। वही पुरानी परिपाटी चल रही है। दुनिया बदल चुकी है, जरूरतें बदल चुकी हैं, रहन-सहन के सब तरीके बदल चुके हैं, बोलचाल की भाषा बदल चुकी है, मगर आदमी के सोचने का तरीका, जो जीवन की असली चीज है, बिल्कुल वैसे का वैसा है, पुराना और घिसा-पिटा। वही कुण्ठा, वही ग्लानि, वही सामाजिक कुरीतियाँ, हमलोग इनसे बाहर नहीं आ पाते। पता नहीं किस तरह हम जी रहे हैं।

हम भ्रष्टाचार वगैरह की बात कभी नहीं करते हैं। ईमानदारी और बेईमानी नाम की कोई चीज नहीं होती, हम तुम लोगों को साफ-साफ बोल रहे हैं। और वह

जायेगी भी नहीं, वह ऐसी ही रहेगी जैसे आज है, क्योंकि यहाँ कोई प्रणाली नहीं है, कोई सिस्टम नहीं है। आखिर अमेरिका में बसी कम्पनी हॉन्गकॉन्ग में व्यापार नहीं चलाती क्या? अरबों के बैंक चलते हैं न? बोईंग कम्पनी का दफ्तर है वॉशिंगटन में और कारखाना है चीन में। क्या आमने-सामने रहकर ही ईमानदारी हो सकती है? नहीं, बेईमानी इसलिए होती है क्योंकि सिस्टम नहीं है। तुम्हारे यहाँ क्या सिस्टम है? नौकर को छः सौ रुपये देते हो, बेईमानी नहीं करेगा तो क्या करेगा। उसको छः हजार रुपये दो, उसके दिमाग में बेईमानी आ ही नहीं सकती। वह तो सोच भी नहीं सकेगा कि छः हजार रुपये कब और कैसे खर्च करे। बाहर के देश वाले भरपूर पैसा देते हैं, इसलिए कभी बेईमानी का सवाल नहीं उठता।

लोग कहते हैं कि भ्रष्टाचार कानून से सुधरेगा या उपदेशों से सुधरेगा या दण्ड से सुधरेगा, मगर कुछ सुधरने वाला नहीं है। रावण पैदा होते ही जाएगा। सबसे जरूरी चीज यह कि नागरिकों के व्यक्तित्व में, राष्ट्र के सामाजिक चिन्तन में परिवर्तन की आवश्यकता है। यूरोप के देशों में भी सामाजिक चिन्तन हमारे जैसा ही था। दौ सौ साल पहले की बात बोल रहा हूँ। मगर इसके बाद बड़े अच्छे-अच्छे सामाजिक चिन्तक और शिक्षाविद् आए। फ्रॉयड जैसे चिन्तकों ने तो ईसाई धर्म को धराशायी कर दिया। फ्रॉयड बड़ा मनोवैज्ञानिक था जिसने अपने चिंतन को विज्ञान की तरह रखा। ईसाई धर्म की जितनी भी मान्यताएँ थी, सबको उसने गलत ठहराया। आज पाश्चात्य सभ्यता फ्रॉयड की विचारधारा से प्रभावित है। वहाँ के सामाजिक नियम और कानून उससे प्रभावित हैं। वैसे ही विज्ञान का चिन्तन आया। कितने वैज्ञानिकों को पादरियों ने कटवाया, तुम तो जानते हो। दुनिया गोल है, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है—गैलिलियो जैसे वैज्ञानिकों की कहानियाँ तो तुम सब को मालूम हैं। उन लोगों ने ईसाई धर्म और बाईबिल की सब मान्यताओं को धराशायी किया। आज यूरोप में कोई ईसाई थोड़े ही हैं? वहाँ ईसाई धर्म नाम मात्र का है। हमलोग तो वहाँ जाते हैं, सीधे-सीधे सबको गेरू पहनाते हैं, माला देते हैं, सर मुड़वाते हैं।

कोई भी सभ्यता स्वतंत्र चिंतन के बिना आगे बढ़ नहीं सकती। इस स्वतंत्र चिन्तन में पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, शिक्षा, विद्या, सब चीजें आनी चाहिये। परिवर्तन जीवन का सिद्धान्त है। जाड़ा आता है तो स्वेटर पहनते हो, गर्मी आती है तो स्वेटर उतार देते हो। जब ऋतु के साथ कपड़े बदलते हो, तो परिस्थितियों के साथ समाज को क्यों नहीं बदलते हो?

—17 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

मैं एक बात जानता हूँ कि 'मैं कुछ नहीं जानता'।

— सुकरात

कर्म और धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भारत की आध्यात्मिक परम्पराएँ ध्यान करने के बजाय सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं। ध्यान तो मात्र एक साधन है, कर्मों की अवधारणा समझने, उनके प्रति सजगता विकसित करने और उन्हें सही ढंग से सम्पादित करने का। जो भी कर्म हमारे अहंकार को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है, वह एक ऐसी छाप छोड़ जाता है जो बन्धनकारी होती है। और जो कुछ भी हमारे अहंकार को एक रचनात्मक, सकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है, वह ऐसा कर्म होता है जो हमें अहंकार के बन्धन से मुक्त करता है। इसलिए लोगों को सत्कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए।

तुम्हें कोई व्यक्ति अनाप-शनाप कह देता है और तुम उसके कथन से प्रभावित होकर दु:ख झेलते हो। यदि कोई मुझसे कहे कि 'तुम गधे हो,' तो मैं जवाब दूँगा, 'हाँ, ठीक ही तो है, आखिर एक गधा ही तो दूसरे गधे को पहचान सकता है।' न तो मैं उस व्यक्ति की बात पर विश्वास करूँगा, न ही इस बात से उदास हो जाऊँगा कि किसी ने मुझे गाली दी। मैं अपने आप से कहूँगा, 'ठीक है, वह मुझे गधे के रूप में देखता है तो देखे। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं गधा नहीं हूँ। फिर क्यों इस बात का प्रभाव अपने पर पड़ने दूँ? दूसरा व्यक्ति किसी प्रतिक्रिया के वशीभूत होकर अनाप-शनाप कह रहा है और मैं अपने ज्ञान और विवेक के बल पर इस परिस्थिति को समझ रहा हूँ।'

समस्याएँ तब खड़ी होती हैं जब तुम किसी क्रिया पर प्रतिक्रिया करते हो। अगर तुम किसी कर्म को समझकर स्वीकार कर लेते हो तब सद्भाव बना रहता है, लेकिन अगर तुम प्रतिक्रिया व्यक्त करते हो तब तो समस्याएँ खड़ी होंगी ही।

जब योग के अभ्यासों द्वारा हम अपने स्वभाव और कर्मों का सुनियोजन कर लेते हैं, तब हम जीवन की धारा में आसानी से बहने लगते हैं। इसी प्रशिक्षण को कर्मयोग कहते हैं। शरीर, मन और अहंकार द्वारा हम अचेतन, अवचेतन और

चेतन स्तरों पर जो भी कर्म करते हैं, उनके बीच पूरा तालमेल, सामंजस्य और समस्वरता रहती है।

जिन भी अनुभवों और परिस्थितियों से हमारा सामना होता है, उन सबसे हम कुछ-न-कुछ सीख सकते हैं। जब हम इन परिस्थितियों और संघर्षों का सकारात्मक रूप से सामना करने में सक्षम हो जाते हैं तब यह सीखने की प्रक्रिया बन जाती है। हमें धर्म का पालन करना सीखना है, उसके विरुद्ध जाना नहीं। अगर तुम धर्म का अनुसरण करते हो, जीवन-धारा में सहजता के साथ बहते हो, सजगता और समझदारी का विकास करते हो, तो तुम मुक्त हो, स्वतंत्र हो। यदि तुम अपने धर्म का पालन नहीं करते, अपने ज्ञान का उपयोग नहीं करते, तब तुम्हारे कर्म तुम्हें बन्धन में डाल देंगे।

कर्म तभी फलदायी होता है जब वह धर्म से जुड़ा होता है। इसलिए कर्मों को सुनियोजित करने के लिए पहले मानव धर्म को पहचानो। मानव धर्म हमारा मौलिक दायित्व है। जब कर्म धर्म से जुड़ता है तब वह बदल जाता है, वह कर्त्तव्य बन जाता है। किसी कर्म को कर्त्तव्य के रूप में करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे धर्म के साथ जोड़ा जाय। धर्म शब्द का प्रयोग यहाँ पर किसी पंथ या सम्प्रदाय के सन्दर्भ में नहीं किया जा रहा है। धर्म हमारी बुनियादी जिम्मेदारी है। कर्मों को सम्हालने के लिए कर्त्तव्य को प्राथमिकता दो, कर्म को नहीं। अपने को जिम्मेदारी के साथ जोड़ो, क्योंकि वहाँ कर्म और धर्म का सुन्दर संयोग होता है। इस संयोग में सब कुछ स्वाभाविक रूप से होने लगता है। रूपरेखाएँ और योजनाएँ बन जाती हैं, कार्य सम्पन्न हो जाते हैं, उनके परिणाम भी सामने आ जाते हैं और जीवन-चक्र आगे बढ़ता जाता है।

जब तुम अपने घर-परिवार की देखभाल करते हो, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था करते हो, तब यह सब तुम अपना कर्त्तव्य मानकर करते हो। अपनेपन का भाव तुम्हें अपने परिवार से सम्बन्धित सारी गतिविधियों के प्रति सजग रखता है। यदि कहीं कुछ गड़बड़ होने लगती है तो तुम फौरन कोई-न-कोई कार्यवाही करते हो और इसको तुम अपना कर्त्तव्य मानते हो। यदि परिवार के दो सदस्य आपस में झगड़ने लगते हैं तो तुम जाकर उन्हें झगड़ने से मना करते हो। ऐसा करना तुम अपना फर्ज समझते हो, इसे तुम कर्म नहीं मानते। जो भी कर्म धर्म को उत्पन्न करता है, जिस भी कर्म के माध्यम से एक सकारात्मक और रचनात्मक परिवेश का सृजन होता है, वह कर्त्तव्य होता है। इसी कर्त्तव्य-भाव को कर्मों से जोड़ना है।

यदि तुम जीवन में अपने द्वारा किए गए हर एक कार्य को कर्म नहीं, कर्त्तव्य समझने लगोगे तब तुम एक कर्मयोगी कहलाओगे। इसलिए कर्मयोगी बनने के लिए सिर्फ अपने कर्मों को सिद्ध करना है। यह कैसे सम्भव है? उस वृक्ष जैसा बनकर जो सबको समान रूप से फल देता है, चाहे कोई उस वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़े या

फल नीचे गिराने के लिए पत्थर मारे या फल को पा लेने के लिए वृक्ष को ही काट डाले। हर एक अवस्था में पेड़ का कर्त्तव्य होता है फल देना। प्रकृति हमेशा अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, जबकि मनुष्य कर्म का अनुसरण करता है। प्रकृति सभी को समान भाव से देखती है, लेकिन मनुष्य अपने कर्मों के कारण अपने आप को अहमियत देता है। जब कर्त्तव्यों का पालन होता है तब हर व्यक्ति को बराबर की अहमियत मिलती है। कर्मयोगी बनने का सरल तरीका है कर्मों को धर्म के साथ जोड़ देना। और अगर तुम साधना के मार्ग से कर्मयोगी बनना चाहते हो, अगर तुम अपने जीवन की विक्षिप्त वृत्तियों को शान्त कर प्रगति करना चाहते हो, तब तुम अपने अंत:करण के चार आयामों—मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के साथ समझौता करना सीखो। इनमें सबसे बड़ा समझौता करना होगा अहंकार के साथ।

अहंकार अन्तिम अवरोध है। अहंकार सबसे अधिक कष्ट देता है, क्योंकि यह हमें स्वयं के प्रति सजग बनाता है, हमें हमारे नाम, यश, पद और प्रतिष्ठा का ख्याल कराता है। यह हमें पूरी तरह स्व-केन्द्रित बना देता है। और यह अहंकार ही है जो हमें कर्मों के बन्धन में जकड़ देता है और हमें धर्म से विमुख कर देता है। इसी वजह से हम कर्म को जिम्मेदारी के बजाय बोझ समझते हैं। और यह अहंकार इच्छाओं और कामनाओं द्वारा पोषित होता रहता है।

अहंकार को सम्हालने के लिए अपने आप से समझौता करना आवश्यक है, क्योंकि जब तक अहं भाव बना रहेगा तब तक अपने परिवेश के साथ तुम्हारी क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहेगी, दूसरों के साथ संघर्ष होता रहेगा। तुम्हारी प्रतिक्रियाओं में मन की नकारात्मक वृत्तियाँ ही अभिव्यक्त होंगी। तुम दूसरों के कथनों पर प्रतिक्रिया करोगे और उनसे बदला लेने की कोशिश करोगे। जब तक अहंकार नियंत्रण में नहीं आता, तब तक समझौता नहीं होता। और जब अहंकार नहीं रहता, तब समझौता आसानी से हो जाता है और कर्म कर्मयोग में बदल जाता है।

मानव धर्म का पालन करते जाओ, अहंकार को सिर मत उठाने दो, दूसरों की परिस्थिति, चिन्तन और आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करो, और जिस तरह अपनी भलाई के लिए काम करते हो, वैसे ही दूसरों के उत्थान के लिए भी प्रयासरत रहो। ये कर्मयोगी के लक्षण हैं। कर्मयोग एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम अपने चरित्र को विक्षेपरहित और परिष्कृत बना सकते हैं।

जब हम कर्म के साथ योग शब्द को जोड़ते हैं, तब इसका तात्पर्य एक ऐसी क्षमता से होता है जिसके द्वारा हम मन और अहंकार के थपेड़ों से अप्रभावित रहते हुए अपनी जीवन-यात्रा सहजता और सुगमता से संपन्न करते हैं, अपने कर्मों को सकारात्मक, सृजनात्मक और उत्कृष्ट बनाने का प्रयास करते हैं। यही कर्मयोग की सम्पूर्ण प्रक्रिया है।

—'कर्म और कर्मयोग' से उद्धृत

शिक्षकों के चंद शब्द

बिहार राज्य के विभिन्न जिलों के उच्च विद्यालयों में कार्यरत शारीरिक-शिक्षा-शिक्षकों के लिए गंगा दर्शन में फरवरी 2017 के दौरान योग प्रशिक्षण संचालित किया गया, जिसमें कुल 130 प्रतिभागी सम्मिलित हुए। अपने प्रशिक्षण के अंग के रूप में शिक्षकों ने सभी आश्रम गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया। उनके कुछ अनुभव यहाँ प्रस्तुत हैं–

अपने जीवन की छोटी-सी अवधि में मैं देश के कई तीर्थस्थलों पर गया। मुझे दो-तीन देशों में जाने का भी मौका मिला। सभी जगह देखा कि लोग चमक-दमक की दुनिया में मशगूल होकर परेशान हैं, पर आश्रम में आने और यहाँ कुछ दिन बिताने के बाद मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मैं अपने देश में हूँ, वह भी बिहार में। इस आश्रम के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वातावरण में जिस आनन्द की अनुभूति हुई, मैं इसके बारे में जितना भी लिखूँ, कम होगा। इतना जरूर कहूँगा कि इस आश्रम में आने के बाद मनुष्य के जीवन में बहुत बड़ा बदलाव आता है।

– उमेश प्रसाद, कस्तूरबा गाँधी बालिका उच्च विद्यालय, खगौल (पटना)

इतने अच्छे एहसास को व्यक्त करने के लिए तो शब्द कम पड़ गए हैं। हमें तो योग प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था, लेकिन योग के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास होता प्रतीत हुआ। ऐसे स्वच्छ, सात्त्विक वातावरण में रहने का सुअवसर

किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। यहाँ जितनी बारीकी से, कड़ी-से-कड़ी जोड़कर हमें योग का अभ्यास कराया गया, उसके लिए हम इस योग विद्यालय के आभारी हैं।

– सोनी कुमारी, ह. ना. उच्च विद्यालय, महदीपुर-बन्देहरा (खगड़िया)

मेरे लिए यह योग प्रशिक्षण सत्र अत्यंत आनंददायक एवं उत्साहवर्द्धक रहा। विशेषरूप से इस संस्था की खोज, योगनिद्रा एवं अंतर्मौन की विधियाँ आत्मनियंत्रण एवं कई व्याधियों के शमन के लिए जनसामान्य हेतु अति लाभप्रद हैं। आश्रम की अनुशासित व्यवस्था और दिनचर्या का अनुभव करते हुए ऐसा प्रतीत हुआ कि जीवन का वास्तविक सुख इसी में है। गीता की पंक्ति याद आ गई– *अशान्तस्य कुत: सुखम्।* यौगिक जीवनशैली अपनाकर ही आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, न केवल पुस्तकें पढ़कर, ऐसा यहाँ प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत प्राचीन योगविद्या का पोषण एवं संवर्द्धन यहाँ अक्षरश: होता है, यह बड़े आत्मसंतोष एवं गर्व का विषय है।

– प्रवीण कुमार सिंह, उच्च विद्यालय, बाजितपुर (सारण)

यहाँ जो कुछ भी सिखाया गया, चाहे वह योगासन हो या प्राणायाम या योगनिद्रा, वह सब अतुलनीय है। हमें यहाँ जो भी शिक्षा मिली, उसने बहुत ही सुंदर, मनोहर भावों के साथ हमारे मानस पटल पर प्रभाव छोड़ा है। इस योगपीठ का हमारे जीवन और चरित्र पर अद्भुत प्रभाव पड़ा है।

– धनंजय कुमार मिश्र, रा. रा. स. उच्च विद्यालय, हरनाटांड (प. चम्पारण)

बिहार योग विद्यालय में बिताए ये दिन अविस्मरणीय हैं। यहाँ की यौगिक जीवनशैली, अनुशासनप्रियता और गुरु के प्रति स्नेह, आदर एवं समर्पण के भाव ने सर्वाधिक प्रभावित किया, जो प्रेरणादायक और अनुकरणीय है। यद्यपि यहाँ कम ही समय बीता, फिर भी यहाँ की चीजों को हम भूल नहीं सकते। विभागीय या व्यक्तिगत स्तर पर जब भी मौका मिलेगा, यहाँ पुन: आने का जरूर प्रयास करूँगा और आश्रम को अपनी सेवा दूँगा। यहाँ के योग शिक्षकों एवं आश्रम के तमाम सदस्यों को, जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें सहयोग मिला, मेरा वंदन है।

– नीरज कश्यप, श्री महावीर उच्च विद्यालय, पीपरा (पूर्वी चम्पारण)

बिहार योग विद्यालय को तहे दिल से धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने मेरा योग से परिचय कराया जो मुझे बहुत अच्छा लगा। यहाँ की सारी व्यवस्थाएँ जैसे स्वच्छता, समय-सारणी, भोजन के समय मौन-पालन जैसे अनुशासन और यहाँ के शिक्षकों

की शालीनता देखकर मन अपने आप शांति में रहना पसन्द करने लगता है। यदि दुबारा आने का मौका मिला तो अवसर नहीं चूकूँगा।

– राजेश कुमार, श्री दरबारी राय उच्च विद्यालय, महथावा (अररिया)

यहाँ दी गई योग शिक्षा अमूल्य एवं काफी लाभदायक है। योग के आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा और अंतर्मौन जैसी विधियाँ जो स्वस्थ एवं एकाग्र रहने के लिए आवश्यक हैं, उनका अभ्यास करूँगा और बच्चों को भी सिखाऊँगा। यहाँ सीखे ज्ञान का अपने विद्यालय एवं समाज में अवश्य प्रसार करूँगा।

– राजीव कुमार तिवारी, समस्तीपुर

योगाश्रम में प्रवेश करते ही ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी दूसरी दुनिया में प्रवेश कर रहा हूँ। बिल्कुल आध्यात्मिक, अनुशासित और वैज्ञानिक दिनचर्या है यहाँ की। क्षणिक सुखों की ओर आकर्षित होना मानव का सहज गुण है, लेकिन जो इसमें संयम बरतता है वही साधक है। साधक के लिए कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं।

इस योगाश्रम की शिक्षा व्यवस्था प्रशिक्षुओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करती है। योग के माध्यम से मनुष्य के अंदर सजगता विकसित की जाती है। भारतीय संस्कृति संस्कारों में विश्वास करती है। यहाँ संस्कारों की रक्षा की जाती है तथा ऐसे बच्चों एवं युवाओं का निर्माण किया जाता है जो शीलवान् हैं, चरित्रवान् हैं। यहाँ के संन्यासियों के बारे में क्या कहना–मुस्कुराता चेहरा, ललाट पर चमक और समाज को बदलने का संकल्प। अंत में पुन: आने की इच्छा के साथ इस भव्य योग स्मारक को शत-शत नमन।

– भगवती रंजन पाण्डेय, भागलपुर

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

कर्म और कर्मयोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 85, ISBN: 978-93-81620-60-1

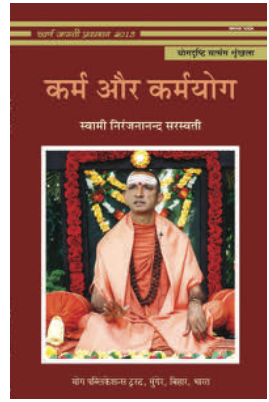

उपलब्ध

'कर्म मानव प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह ऐसी चीज है जो सहज और स्वाभाविक रूप से व्यक्त होती है, और देखा जाए तो हमारा समस्त जीवन कर्म की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह सारी सृष्टि कर्म की साक्षात् अभिव्यक्ति ही है, जिसमें कर्म का बीज दैवी इच्छा से आरोपित किया गया है।'

कर्म और कर्मयोग स्वामीजी के फरवरी 2010 के योगदृष्टि सत्संगों का विषय था। ये प्रबोधक सत्संग इस बहुचर्चित विषय को एक नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उत्कृष्ट जीवन जीने का सरल मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन सत्संगों में विषय के सैद्धान्तिक पक्षों के साथ-साथ व्यावहारिक पक्षों का सुबोध निरूपण है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।